साधना

लेखक एवं प्रकाशक
धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2021
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक :

दो शब्द

कोई कहता यहाँ, कोई कहता वहाँ ।
सारी दुनियाँ में ढूँढा कहीं नहीं मिला ।।
जब साधना में खुला चक्षुज्ञान का ।
मनमन्दिर में दर्शन हो गया भगवान् का ।। —धर्मपाल कपूर

आज सारे संसार में अधिक मानवजाति आकुल-व्याकुल, व्यथित, व्यग्र और किंकर्तव्यविमूझ दिखाई देती हैं इसका मुख्य कारण कि आज व्यक्ति साधना न करके साधनों के पीछे पागल हो रहा है । भौतिक साधन भी जीवनयापन के लिये परमावश्यक है । इन से व्यक्ति को क्षणिक सुख मिल जाता है । परन्तु शान्ति और आनन्द नहीं मिल सकता है । अतः इसके लिये आज साधना की परमावश्यकता है । इच्छाओं का विरोध ही सबसे बड़ी साधना है ।

साधना के लिये समयपालन परमावश्यक है और जीवनलक्ष्य भी निर्धारित होना चाहिये । यह व्यक्ति की रुचि, योग्यता और परिस्थितियों के अनुकूल हो । इसकी प्राप्ति के लिये उसे आत्मविकास, कठोर परिश्रम, सुदृढ़ संकल्प, सकारात्क सोच की आवश्यकता है । इसकी प्राप्ति के लिये साधक को पाँचों कोश, ध्यान, समाधि, आत्मदर्शन, साक्षात्कार के लिये अपने मन को शून्य करके एकाग्र करना चाहिये । तभी उसका मन शुद्ध होगा । एक शक्ति है जो कि सर्वव्यापक है परन्तु उससे मिलन केवल अपनी आत्मा में ही हो सकता है और कहीं नहीं । जैसे साईं बुल्लेशाह ने लिखा भी है—

वेद कुरानां पढ़पढ़ धक्के, सजदे कर दियां धस गये मथे ।
न रब तीरथ न रब मक्के जिस पाया तिस नूर-अनवार ।

अतः प्रभु अनुभूति साधक को केवल साधना के द्वारा ही उसके हृदय में होती है जहाँ पर आत्मा व परमात्मा है । दोनों का मेल वहीं होता है जहाँ पर दो एक साथ रहते हैं । अतः साधक को साधना द्वारा आत्मदर्शन में जब वह तुर्यावस्था पहुँच जाता तो प्रभु का साक्षात्कार होता है । वही भक्तप्रभु की रजा में रहकर आनन्द प्राप्ति करता है ।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री जय किशन धीमान जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, बलदेवराज जी, हरिकृष्ण शर्मा जी, मोहन लाल गुप्ता जी, अनुराग वालिया जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । श्री जय किशन धीमान जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है । मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से मैंने संदर्भ उद्धृत किये हैं । जैसे कि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वद एकं मा लिख

सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गई तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जाती है । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु मैं भी संसार के प्रत्येक व्यक्ति की तरह अल्पज्ञ और अपूर्ण हूँ । अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकों से क्षमा चाहूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 18.5.2021

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी ने साहित्य के क्षेत्र में अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनमें से कुछ धार्मिक, कुछ साहित्यिक तो कुछ पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित हैं। इनकी प्रस्तुत पुस्तक ''साधना'' एक धार्मिक पुस्तक है जिसका मुझे वाचन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जैसा कि नाम से ही विदित होता है साधना नामक पुस्तक में इन्होंने अपनी अभूतपूर्व साधना का ही परिचय दिया है। मानव के जीवन का उद्देश्य तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति ही है। इसे पाने के लिए मानव को अथक प्रयास एवं साधना करनी पड़ती है। इस प्रकार पुस्तक का नामकरण भी इन्होंने बड़े ही विचारवान ढंग से किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में मानव को अपने जीवन को सफल बनाने के लिये साधना अथवा परिश्रम पर विशष बल दिया है। किसी भी कार्य की सफलता मानव के परिश्रम अथवा साधना पर ही निर्भर करती है। साधना के मार्ग में आने वाले प्रमुख दोष पापी कर्मों के मानव आत्मा पर पड़े संस्कार हैं जिन्हें मल कहा जाता है। दूसरे निरन्तर विषयों का चिन्तन करने से मन की अस्थिरता को विक्षेप कहा गया हैं तीसरे संसार के समस्त नाशवान् पदार्थों के प्रति आसक्ति का मन पर प्रभाव होने से आवरण कहलाता है। यह आवरण मानव की बुद्धि का हरण कर लेता है जिससे वह विद्या और अविद्या के भेद को नहीं जाना पाता। लेखक ने मानव के स्थूल शरीर से लेकर कारण शरीर तक के सभी अंगों पर बड़ा ही विशद अध्ययन किया है। स्थूल शरीर को बलिष्ट एवं परिपकव बनाने हेतु उन्होंने सात्विक आहार, सात्विक विहार, उचित निद्रा को प्रमुख स्थान दिया है। सात्विक अन्न से ही मानव का प्राणमय कोश बलिष्ट होता है। शरीर में नासिका से लेकर नाभि पर्यन्त जो प्राण होता है उसे ही प्राणमय कोश कहा जाता है। प्राणमय कोश के प्रबल होने से शरीर में विद्यमान अष्टचक्र जागृत हो जाते हैं। प्रथम मूलाधार तथा अन्तिम सहस्रार चक्र प्रभावित होता है। इसमें दिव्य आत्मप्रकाश है। इन्हीं कारणों से मानव शरीर को अनमोल रत्न कहा जाता है।

परमात्मा का अपने हृदय में अनुभव करने के लिए ध्यान की आवश्यकता है। ध्यान अर्थात् साधना के द्वारा ही मानव इष्टसिद्धि को प्राप्त

करता है। साख्य दर्शन के अनुसार ध्यानं निविषयं मनः (6.25) अर्थात् ध्यान से बाह्य इन्द्रियाँ अपने विषयों को छोड़ देती हैं। योगदर्शन में ध्यान से पूर्व मन की एकाग्रता के लिए छः अंगों का पालन करने का निर्देश दिया है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा। ध्यान के समय प्रभु के गुणों का वर्णन करना भी उचित होता है जिससे मन उस दिव्य आनन्द की अनुभूति करने लगता है। किसी कवि के शब्दों में—

सत्य रूप चेतन प्रभु हो, तुम दिव्यानन्द प्रदाता हो।
जीवन सबका रहे सुरक्षित, बल और अन्न सुदाता हो।।

मन के स्थिर होने पर मानव को आत्मचिन्तन करना चाहिए। जीवात्मा शुद्ध और बुद्ध है। जब वह अपना अवलोकन करने लगती है तब उसे परमानन्द की अनुभूति होती है।

पुस्तक के अन्त में लेखक ने साधना में ही सुख की गणाना की है। भोग ऐश्वर्यों के साधनों में नहीं। भोग से कभी भी आत्मा सन्तुष्ट नहीं हो सकती। अतः कवि बड़े ही सुन्दर शब्दों में लिखता है—

यही प्रार्थना अन्तिम मेरी, हे प्रभु तुम स्वीकार करो।
मेरे तन की सकल शक्ति का, आज तुम्हीं संचार करो।।

अतः यह कहना उचित होगा कि पुस्तक बहुत ही ज्ञानवर्धक एवं रुचिकर है। निस्संदेह यह समाज के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है। मैं धर्मपाल कपूर जी की लम्बी और सुखद आयु के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। निम्न शब्दों के साथ पुनः ईश्वर का धन्यवाद करता हूँ—

श्रुति मन्त्रों से स्मरण तुम्हारा, सुखप्रद आयु प्रदान करो।
नानाविध यज्ञों के स्वामी, दिव्य बोध आदान करो।।

जय किशन एम.ए.
म. नं. 76, गाँव. व डा. कोट,
जि. पंचकूला (हरियाणा)
मो. : 8168490221
9468340497

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	साधना क्यों	1
2.	समयपालन	3
3.	साधना के लिए तीन दोषों से दूरी	6
4.	जीवनमुक्त	8
5.	लक्ष्य	10
6.	अन्नमय कोश (स्थूल शरीर)	12
7.	प्राणमय कोश (सूक्ष्म कोश)	21
8.	मनोमय कोश (सूक्ष्म कोश)	26
9.	विज्ञानमय कोश (सूक्ष्म कोश)	28
10.	आनन्दमय कोश (कारण शरीर)	30
11.	योगशील	34
12.	ध्यान	38
13.	समाधि	43
14.	ब्रह्म का स्वरूप	45
15.	आत्मा का स्वरूप	47
16.	प्रकृति का स्वरूप	49
17.	ज्ञान समाधि (निर्मलता)	50
18.	भाव समाधि (ब्रह्ममयता)	52
19.	ध्यान समाधि	54
20.	वृत्ति निरोध	56
21.	संकल्प का शमन : विचार का स्तम्भन	58
22.	आत्म अवस्थिति	63
23.	आत्म दर्शन (तुर्यावस्था)	66
24.	साक्षात्कार	68
25.	साधना में सुख है साधनों में नहीं	70

1. साधना क्या है?

मुंड मुंडाना बहुत सरल है, मन मुंडाना सरल नहीं ।
मंदिर में हम बहुत गये, यह मनमंदिर बन न सका ।
पल पल के रसजीवन का, पाना है साधना ।
तन बदले का नाम साधना नहीं, मन बदलने का नाम साधना । ।

स्वामी शिवानंद लिखते हैं–

Sadhana is spiritual movement consciously symtematised. Sadhana is the purpose for which we have come to this place. Abhyana and Sdhana are synonymous terms. The object of Sadhana is to release life from the limitations with which it is bound. –Bliss Divine P 474.

साधना क्रमबद्ध आध्यात्मिक लहर है । साधना करने के उद्देश्य से हम इस स्थान पर आये हैं । अभ्यास और साधना समानार्थ शब्द हैं । साधना का लक्ष्य है जीवन सीमा से मुक्ति और जिससे जीवन बंधा है उसे पाना है ।

वस्तुतः जीवन को मोड़ना साधना है और जीवन को निखारना तपस्या हैं धार्मिक होना क्रिया है और धर्मात्मा होना साधना है । जैसे जब कोई व्यक्ति अकेला साधना करता है तो वह भी साधना है । परन्तु जब हम सामूहिक प्रार्थना या कीर्तन करते हैं तो वह सामूहिक साधना है । साधना से ही संतोष, शांति, प्रसन्नता एवं आनंद (**Bliss**) की प्राप्ति होती है जोकि धन से नहीं हो सकती क्योंकि धन से क्षणिक सुख-सुविधाएँ तो मिल सकती हैं परन्तु आनन्द नहीं । परन्तु जीवनयापन के लिए धन परमावश्यक है । अपितु जीवन का कायाकल्पय साधना से ही होता है । साधन और साध्य का अटूट सम्बन्ध है । वस्तुतः साधना की परिभाषा एक उदाहरण द्वारा अग्रलिखित स्पष्ट है ।

एक शिष्य ने अपने गुरू स पूछा, ''हे गुरुवर ! रोजाना ज़िन्दगी में आत्मसाक्षात्कार की साधना आप कैसे करते हैं ?'' गुरु ने कहा, ''वत्स ! मुझे जब भूख लगती है तब खाता हूँ और जब थकता हूँ तब आराम करता हूँ । बस यही मेरी साधना है ।''

शिष्य को बहुत आश्चर्य हुआ, उसने कहा, ''यह तो सभी करते हैं ।'' गुरु ने बताया, नहीं, सभी ऐसा नहीं करते, सौ में एक भी शायद ही करता हो ।'' शिष्य को समझ नहीं आया, उसने प्रार्थना की, ''गुरुवर, कृपा मुझे इसका अर्थ समझाएं कैसे ? गुरु से स्पष्ट किया, ''देखो, जब लोग खाने बैठते

हैं, तो सिर्फ हाथ-मुँह से खाते हैं । मन से नहीं । मन कहीं और भटकता रहता है । सोते हैं तो शरीर से सोते हैं मन से नहीं ।

इसलिए मन कहीं और भटकता रहता है । शरीर और मन के बीच की यह दरार ही साधना का विक्षेप है । मैं यह दरार नहीं पड़ने देता ।'' जैसे स्वामी विवेकानंद लिखते हैं–

Every duty is holy and devotion to duty is the highest form of the worship of God.

--Vol. V P-240

प्रत्येक कर्त्तव्य पवित्र है और उस कर्त्तव्य के प्रति समर्पण ही प्रभुपूजन की पराकाष्ठा है ।

अब प्रश्न उठता है कि एक साधक साधना द्वारा जीवन का कायाकल्प कैसे करे । उदाहरण एक साधक का ऐसा करने के लिये पाँच विकारों–काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को नियंत्रण करके उनके स्थान पर कामना, मन्यु, संतोष, स्नेह और गौरव को अपनाना चाहिये । इसी प्रकार पाँच मकारों–मांस, मदिरा, मछली, मैथुन एवं मुद्रा का त्याग करके अपनी साधना को बढ़ाना चाहिये ।

हम देखते हैं कि मुख्यता जैनी साधु पाँच विकारों एवं मकारों पर नियंत्रण करके अपना जीवन व्यतीत करता है । वस्तुतः यही सच्ची साधना है जोकि अत्यधिक कठिन कार्य है । उदाहरणतः आजकल दिगम्बर संत मुनि प्रमाण सागर जी, मुनि पुलक सागर जी आदि साधना में व्यस्त हैं । वस्तुतः ये ही सच्चे साधक हैं । दिगम्बर संत साधना की पराकाष्ठा होता है ।

इसके अतिरिक्त महर्षि दयानंद एवं स्वामी विवेकानंद भी उच्चकोटि क साधक हो चुके हैं । जिन्होंने अपनी सघन साधना द्वारा मानवता को अद्‌भुत-अद्वितीय देन प्रदान की है । इसी प्रकार स्वामी विद्यानंद 'विदेह' जी जोकि अपनी सारी पैंशन निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा में व्यय कर देते थे । वे भी उच्चकोटि के साधक थे । इसी प्रकार आचार्य श्री राम शर्मा जी अपनी सारी पैंशन जोकि उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी होने के कारण प्राप्त होती थी, प्रधानमंत्री राहत कोष में दान कर दिया करते थे । वे वस्तुतः तप, त्याग, तपस्या की साक्षात् प्रतिमा थे । अतः उन्होंने भी अपनी साधना से उच्चकोटि का साहित्य प्रदान किया है । अतः मुझे लिखना पड़ा ।

ज़िन्दगी जीना आसान नहीं होता ।
बिना साधना के कोई महान् नहीं होता ।।
जब तक न पड़े हथोड़े की चोट ।
पत्थर भी भगवान् नहीं होता ।।

–धर्मपाल कपूर

2. समयपालन

तप और त्याग केवल साधन है और साधना साध्य है । साधन के लिए हृदय में अनुशासन, कठोर परिश्रम, सकारात्मक सोच एवं श्रद्धा होनी चाहिये तभी वह इसमें सफल हा सकता है ।

There is only one way, traffic in time.

Take the proverb to heart thine.

Take and hold it fast.

The Mill cannot grand.

With the Water that is fast.

The greatest gift you can give to some one is your time because time is a portion of your life that you can never get back.

सब से बढ़कर समय है, सभी गुणों की खान ।

करे समय का मान जो वह पुरुष महान् ।।

साधना सम्बन्ध, अभ्यास व व्यवस्था में तनिक भी अनावश्यक विलम्ब न किया जाना चाहिए । समय कभी किसी की प्रतीक्षा नहीं करता है । जो समय की उपेक्षा करता है, वह स्वयं संसार में सदा उपेक्षित रहता है । जो समय का मूल्य समझकर एक क्षण भी वृथा नहीं खोते, वे साधना के उत्कृष्ट सोपान पर चढ़ते हुए चरम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सिद्धि, साफल्य और विजय सम्पादन करते हैं ।

समयपालन साधना का मेरुदण्ड है । समयपालन के अभ्यास के बिना साधना का अन्य कोई अभ्यास चल ही नहीं सकता । समयपालन साधनावृक्ष का मूल है । जिस प्रकार बिना मूल के वृक्ष की न स्थिति रह सकती है, न वह हरा-भरा रह सकता है, न उस पर फल ही लगते हैं, उसी प्रकार समयपालन का सदभ्यास के बिना साधनावृक्ष न पल्लवित हो पाता है, न फलप्रद होता है ।

अपने दैनिक जीवन के चौबीसों घण्टों का, मिनटशः नही, सैकिण्डशः नहीं, निमेषशः समय-विभाग बनाइए और उसे निष्ठापूर्वक कठोरता के साथ

कार्यान्वित कीजिए। आकस्मिक कार्यों के लिए आपके दैनिक समयविभाग तथा कार्यक्रम में परिवर्तन का होना स्वाभाविक है। किन्तु वह परिवर्तन आवश्यकतानुसार ही होना चाहिए।

प्रत्येक साधक का दैनिक कार्यक्रम तथा समयविभाग उसकी अपनी अवस्था, स्थिति तथा परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होगा। सामान्यतः अग्रलिखित कार्यक्रम वैज्ञानिक तथा उपयोगी है।

(1) रात्रि 8 से प्रातः 4 बजे तक शयन।

(2) प्रातः 4 से 9 बजे तक शौच, स्नान, भ्रमण, नित्यकर्म, व्यायाम, प्राणायाम, स्वाध्याय, समाचारपत्रावलोकन, प्रातराशः।

(3) प्रातः 9 बजे से सायं 5 बजे तक व्यापार, व्यवसाय, भोजन, आदि।

(4) सायं 5 बजे से 10 बजे तक शौच स्नान, ध्यान, भोजन, विहार, मिलना-जुलना, स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण आदि।

समयपालन के मार्ग में 5 बाधाएं हैं—

(1) पहली बाधा है जल्पि (गप-शप, बकवाद, वाचालता)। बातें करने के लिए बातें न कीजिए। आवश्यकता होने पर ही बातचीत कीजिए और आवश्यक बातें ही कीजिए। आवश्यक बातें ही चुकने पर अविलम्ब विदा लीजिए।

(2) अनावश्यक भेटें (मुलाक़ातें)। केवल मिलने के लिए किसी के पास न जाइए। इसमें जहाँ, आप अपना समय नष्ट करते हैं, वहाँ दूसरों का भी करते हैं। आवश्यक कार्य के लिए ही मिलने जाइए, पूर्व-निश्चित समय पर ही मिलने जाइए और आवश्यकता से अधिक समय न लगाइए।

(3) आलस्य को अपने पास न फटकने दीजिए। समयित और नियमित रहने में अपने को सदा असमर्थ पाता है। अवसर और अवकाश उपलब्ध होने पर वह यथासमय और यथाक्रम कुछ

भी नहीं कर पाता ।

(4) पर्यटन निरुद्देश्य इधर-उधर घूमना-फिरना बहुत बुरी बात है । प्रत्यक्षतः ऐसा करने से समय की बहुत हानि होती है ।

(5) संकोच– ध्यान का समय है । उसी समय कोई मित्र मिलने चले आते हैं । आप संकोचवश उनके साथ बातचीत कर रहे हैं और ध्यान के समय का अतिक्रमण हो रहा है । आप शालीन शब्दों में उन्हें सूचित कर दीजिए कि यह आपके ध्यान का समय है । शयन के समय आपके मित्र आकर आपसे वार्तालाप करने लगते हैं । आप हैं कि संकोच के कारण न चाहते हुए भी अपने आराम के समय का अतिक्रमण कर रहे हैं । ऐसा कदापि न कीजिए । अपने मित्र से निवेदन कीजिए, महाशय, क्षमा करें, यह मेरे आराम का समय है । आपके मित्र प्रसन्नता के साथ विदा हो जाएंगे ।

जब तक समयपालन का अभ्यास पक्का न हो जाए, तब तक आराम से पूर्व नित्य विचारकर देखिए कि आपने आज जल्पि, भेंट, प्रमाद, पर्यटन और संकोच के कारण समय-भंग तो नहीं किया हैं यदि किया है तो उसके लिये पश्चाताप कीजिए और भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प कीजिए ।

आराम से पूर्व नित्य दैनिकीय (डायरी) लिखिए और प्रति दिन समयपालन के विषय में अंकित कीजिए, सब कार्य यथासमय, यथाक्रम और पूर्व-निश्चित पुरोगम के अनुसार किए गए । यदि समयपालन में शिथिलता हुई है तो लिखिए, 'अमुक लज्जा की बात है । अब ऐसा कदापि न करूँगा ।

समयपालन जब आपका स्वभाव बन जाए, तब आप विश्वास कर सकते हैं कि आपके लिए साधना का मार्ग सर्वथा सरल हो गया है ।

3. साधना के लिए तीन दोषों से दूरी

राम – परमात्मा कैसे जाना जाता है ।

श्याम – परमात्मा अनुभव से जाना जाता है ।

राम – इसका अनुभव किसको होता है ।

श्याम – आत्मा को ही परमात्मा का अनुभव होता है ।

राम – यह अनुभव कब होता है ।

श्याम – जब मन के तीन प्रकार के दोष दूर हो जाते हैं ।

राम – ये तीन प्रकार के दोष कौन से हैं ?

श्याम – मल, विक्षेप और आवरण से तीन दोष हैं ।

राम – इनकी परिभाषा क्या है ?

श्याम – मन में दूसरों को हानि पहुँचाने का विचार है तथा पापों के जो आत्मा पर संस्कार हैं उसका नाम मल है, लगातार विषयों का चिन्तन करने अथवा मन के स्थिर न रहने का नाम विक्षेप है । संसार के नाशवान् पदार्थों के अभिमान का मन पर पर्दा पड़े रहने का नाम आवरण है ।

राम – इन तीन प्रकार के दोषों को किस तरह दूर किया जाता है ?

श्याम – इनके दूर करने के तीन साधन हैं ।

राम – वह कौन से हैं ?

श्याम – ज्ञान, कर्म और उपासना ।

राम – ज्ञान, कर्म और उपासना से क्या मतलब है ?

श्याम – जो पदार्थ जैसा हो, उसको वैसा ही समझना । जड़ को जड़, चेतन को चेतन, नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य जानना ज्ञान और शरीर, समाज तथा आत्मा की उन्नति के लिए उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए यत्न करना कर्म और पदार्थों के पास जाकर उनके गुणों से अपने दोषों का सुधारने का नाम उपासना है । कल्पना करो, एक मनुष्य शीत का सताया हुआ है । शीत दूर करने के लिए जल के समीप जाता है, तो यह उसका अज्ञान है, ज्ञान नहीं । शीत तो तभी दूर हो सकता है,

जब उसे अग्नि का ज्ञान हो, फिर शीत शान्त करने के लिए अग्नि की प्राप्ति के लिए कर्म करे और फिर अग्नि के समीप जाकर शीत के दोष को अग्नि के गुण गर्मी से दूर करे। तात्पर्य यह है, ज्ञान से मल, कर्म से विज्ञेय और उपासना से आवरण दूर होता है तब कहीं परमात्मा का अनुभव होता है।

राम – इसे थोड़ा स्पष्ट करो। ज्ञान से मल, कर्म विक्षेप और उपासना से आवरण दोष दूर कैसे होते हैं?

श्याम – ज्ञान के द्वारा समझ लेना कि संसार के सब प्राणी और सब पदार्थ नाशवान् हैं इसलिये दूसरों के अधिकारों को छीनने का भाव न रखना ही मल दोष दूर होता हैं किसी के मन विक्षेप अर्थात् चंचलता तब उत्पन्न होती है, जब वह संसार के पदार्थ वास्तव में साधन तो हैं परन्तु साध्य नहीं है। यह सिद्धान्त समझकर जो कर्म किया जाता है वह मनुष्य को जल में कमल की भाँति संसार की ममता से लिप्त नहीं होने देता। निष्काम कर्म से विक्षेप दोष दूर होता है। मनुष्य के मन पर अभिमान को जो एक पर्दा होता है यह परमात्मा प्रदत वस्तुओं को अपनी समझता है। मेरा धन, मेरी स्त्री, मेरा बल राज्य, मेरा शासन आदि। अभिमान में वह दूसरों को कष्ट देता है। वह समझता है मुझसे बड़ा कोई नहीं। परन्तु जब यह ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, मन और इन्द्रियों को बाहर के विषयों से उठकर शक्तियों को हृदय में एकाग्र करता है और समझता है कि मेर निकट परमात्मा है और मैं परमात्मा के निकट हूँ। बस इसी उपासना से अभिमान आवरण दोष दूर हो जाता है। इस प्रकार तीनों दोषों को तीन साधनों से दूर करने का निरन्तर अभ्यास परमात्मा का अनुभव करा देता है। ऐसा करने से ही साधक साधना कर सकता है।

4. जीवन्मुक्त

आत्म-अवस्थिति की सिद्धि होने पर सद्यः (शीघ्र) आत्मसाक्षात्कार होता है, स्व-रूप का दर्शन होता है । स्व-रूप के दर्शन होने पर आत्म-अवस्थिति की स्थिति अचल, अविचल, अडिग, सतत और स्थिर हो जाती है । आत्म-अवस्थिति के सिद्ध होते ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है और आत्म-अवस्थिति के स्थिर हो जाने पर ब्रह्म का व्यवधानरहित अनवरत (निरन्तर) साक्षात्कार रहने लगता है । आत्म-अवस्थिति और ब्रह्म-साक्षात्कार की स्थिरता निष्पन्न होने पर स्थिर आनन्दावस्था की सिद्धि होती है ।

आत्म-अवस्थिति, ब्रह्म-साक्षात्कार और आनन्द की स्थिरता निष्पन्न होने पर आत्मा सर्व द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त और समस्त आवरणों से नितान्त अनावृत हो जाता है । इसी अवस्था का नाम जीवन्मुक्त-अवस्था अथवा विदेहावस्था है । जीवन्मुक्त अवस्था में भ्रान्ति, भय और भोग की तीनों पाशें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, हृदय की सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, मन के सब संशय दूर हो जाते हैं, बुद्धि की चंचलता समाप्त हो जाती है, आधियाँ, व्याधियाँ, उपधियाँ विलीन हो जाती है, चिन्ता क्लेश निर्मूल हो जाते हैं । कर्मफल संस्कार जन्य वासनायें तिरोहित हो जाती हैं, विषय-भोग दूर भाग जाते हैं । देहस्थ प्रकृति के तीनों गुण तम, रज, सत् दिव्यता से संचारित हो जाते हैं, जागृति,स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में तुर्यास्थता रहती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पाँचों विकार विनष्ट हो जाते हैं, अविद्या, अज्ञान, आसक्ति लेप लुप्त हो जाते हैं ।

जीवन्मुक्त अवस्था में ही प्रत्येक कार्य दिव्यता के साथ सम्पादन किया जाता है । जीवन्मुक्त के प्रत्येक कार्य और उसकी प्रत्येक चेष्टा में दिव्यता सन्निहित होती है । जीवन्मुक्त के विचार दिव्य विचार होते हैं । जीवन्मुक्त की दृष्टि दिव्य दृष्टि होती है । जीवन्मुक्त के वचन दिव्य वचन होते हैं । जीवन्मुक्त की भावनायें दिव्य भावनायें होती हैं । जीवन्मुक्त के संकल्प दिव्य

संकल्प होते हैं । जीवन्मुकत के कर्म दिव्य कम्र होते हैं । जीवन्मुक्त का जीवन दिव्य जीवन होता है । जीवन्मुक्त संसार को दिव्य संसार बना देता है । सदा तुर्यावस्था (आत्मजागरण, आत्मप्रकाश) में विचरता है। जीवन्मुक्त का जागरण दिव्य जागरण होता है । उसके स्वप्न दिव्य होते हैं । जीवन्मुक्त की सुषुप्ति दिव्य समाधि होती है । जीवन्मुक्त सब कुछ करता हुआ आनन्द के सागर में तैरता रहता है । जीवन्मुक्त यथेच्छ देहसहित रहता है और स्वेच्छा से देह को त्यागकर शाश्वत विदेहानन्द के आनन्द में रमण करता है ।

5. लक्ष्य

Arise awake and stop not till the goal is reached.

Vol III P 321.

जागो, सावधान हो जाओ और जब तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती रुको मत।

प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। व्यक्ति को इसके लिये अपनी रुचि, योग्यता, आर्थिक परिस्थिति एवं परिस्थितियों को देखना चाहिये। लक्ष्यसिद्धि के लिये आवश्यक आत्मविश्वास, कठोर परिश्रम सुदृढ़ और सकारात्मक सोचें। साधना का लक्ष्य है आत्म-पूर्णता के द्वारा सर्व-पूर्णता, विश्व-पूर्णता। आत्मपूर्णता के बिना विश्वपूर्णता अथवा सर्वपूर्णता का सम्पादन नहीं हो सकता।

आत्मपूर्णता सिद्ध कर लेने पर साधक को आत्मार्थ अपने लिए कुछ करना शेष नहीं रहता। इसीलिए आत्मपूर्णता सिद्ध साधक को आप्तकाम, आप्तपुरुष अथवा सिद्धपुरुष कहते हैं। ऐसा पूर्ण पुरुष आत्मना, आत्मतुष्ट रहता है, ब्रह्मस्थ हुआ स्वतन्त्र ब्रह्म की सृष्टि में विचरता है, प्राणवत् अनायास दिव्यताओं का संचार करता रहता है, अपानवत् सहजतया विश्व का शोधन करता रहता है सूर्यवत् अपने आवृत पर स्थित रहता हुआ विश्व में प्रकाशता रहता है, मेघवत् निर्लेप रह कर सर्वतः आनन्द की वृष्टि करता हुआ जगत् को सींचता रहता है, आकाशवत् निस्पृह रहकर प्राणिमात्र को अनुप्राणित करता रहता है।

पूर्ण व्यक्तित्व ही संसार में पूर्णता का सम्पादन करते हैं। जो व्यक्ति संसार की समस्त अपूर्णताओं को पूर्णता में परिणत करना चाहते हैं, उनके लिए यह अनिवार्य हे कि वे आत्मपूर्णता का सम्पादन करें, अपने जीवनों में पूर्णता लाएं, अपने जीवनों को पूर्ण बनाएं। पूर्ण से ही सम्पूर्ण की पूर्णता का सम्पादन होता है। अपूर्ण से अपूर्णता का विस्तार होता है। अपूर्ण पुरुषों द्वारा विश्व को पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, इसीलिए संसार दिनों-दिन अपूर्ण से अपूर्णतर होता चला जा रहा है। जब पूर्ण बनकर विश्व की सुपूर्ति में लगेंगे, तब ही विश्व की अपूर्णता से पूर्णता की ओर प्रगमन करेगा और

जब साधनाक्रम से वंशानुवंश पूर्ण पुरुषों की परम्परा प्रस्थापित हागी, तब यह जगत् अपूर्ण से पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम होता चला जाएगा ।

क्या पूर्ण पुरुष परार्ध कर्म करते हैं? परार्ध कर्म परसेवा अथवा परोपकार शब्द केवल व्यवहार के लिए ही प्रयुक्त होते हैं । वास्तव में परार्ध कर्म न कभी कहीं होता है, न हो सकता है । प्रत्येक कर्म, प्रत्येक चेष्टा, स्वार्थ-आत्मार्थ ही है । अपने लिए जो कर्म किए जाते हैं वे तो स्वार्थ (आत्मार्थ) कर्म हैं ही, अपनों के लिए जो कर्म किए जाते हें वे भी तो स्वार्थ (आत्मार्थ) ही हैं । स्वार्थ कर्म का अर्थ है स्व-अर्थ कर्म और स्वों (अपनों) के लिए कर्म । प्रत्येक प्राणी का सेवाकार्य अपने या अपनों तक ही सीमित होता है । जहाँ-जहाँ और, जिन-जिन में प्राणी की स्वकीयता (आत्मीयता) होती है । प्रत्येक मैं, मेरे मित्र, मेरे परिवार, मेरे समाज, मेरे राष्ट्र और मेरे संसार की ही सेवा करती या करता है । प्रत्येक 'मैं' स्व ही हितसाधना में रह है ।

पूर्ण पुरुष का मैं सम्पूर्ण समष्टि में व्याप जाता है । पूर्णता में परता रहती ही नहीं है । पूर्णता सम्पूर्ण को अपना लेती है । पूर्ण के लिए सब अपने हो जाते हैं । पूर्ण के लिए यह एक भूगोल ही नहीं अखित सृष्टि हो जाती है । अतः पूर्ण व्यक्ति की पूर्णता समष्टि को परिपूर्णता की सतत साधना का साधन बन जाती है । किन्तु पूर्ण की यह सतत साधना होती है सर्वथा अनासक्त । पूर्ण पुरुष की पूर्णता सर्वपूर्णता सम्पादनार्थ बन्धनराहित्य के साथ उसी प्रकार क्रियमाण रहती है, जिस प्रकार सुगन्धिपूर्ण पुष्प से सुगन्धि सब ओर अनायास ही प्रस्फुटित होती रहती है और सूर्य से जिस प्रकार उसकी रश्मियाँ स्वतः ही सब ओर प्रसारित होती है ।

6. अन्नमय कोश (स्थूल शरीर)

आदमी का जिस्म क्या है जिसमें शैदा (मोहित) है जहाँ ।
एक मिट्टी की इमारत एक मिट्टी का मकाँ ।।
खून तो गारा है इसमें ईंट इसमें हड्डियाँ ।
चंद सांसों पर खडा है यह ख्याली आसमाँ ।।
मौत की पुरजोर आँधी इससे जब टकराएगी ।
देख लेना यह इमारत खुद-ब-खुद गिर जाएगी ।।

शरीर समस्त साधनाओं का आदि साधन है। सब प्रकार के धर्मानुष्ठानों और लोक-परलोक की समस्त साधनाओं का आदि साधन ही नहीं, आदि मूल और मुख्य आधार प्रत्येक मनुष्य का अपना शरीर ही है। शरीर के बिना न आत्मसाधना सम्भव है, न परिवार साधना, न समाजसाधना, न राष्ट्रसाधना, न विश्वसाधना। अतः साधनापथ पर आरूढ़ प्रत्येक साधक के लिए यह परमावश्यक है कि यह अपने शरीर को सदा निरोग, स्वस्थ, सुदृढ़, सक्षम, सुन्दर और अनुशासित रखे।

सात्विक आहार, सात्विक विहार, सात्विक निद्रा, मिताचार और मनोयोग–निरोगता के ये पाँच अचूक साधन हैं। सात्विक आहार के लिए सुनिश्चित समय होना चाहिए। प्रातःकाल यथाऋतु दूध या छाछ का सेवन निरोगता के लिए बहुत उपयुक्त है। सायं भोजन यदि सूर्यास्त से पूर्व किया जाए तो निरोगिता सम्पादन में जहाँ बड़ा लाभ हागा, वहाँ ब्रह्मचर्य के पालन में भी बड़ी सहायता मिलेगी। सूर्यास्त के पश्चात् सिवाय जल के अन्य कुछ भी सेवन न किया जाए तो यावज्जीवन जठरग्नि सुष्ठुतया प्रदीप्त रहती है। भोजन के विषय में यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि किसी भी पेय (दूध, छाछ आदि) के सेवन के उपरान्त कम से कम एक घण्टे तक दोबारा किसी भी पेय अथवा खाद्य का सेवन न करना चाहिए। एवमेव एक बार भोजन करने के उपरान्त कम से कम छह घण्टे तक दोबारा भोजन न किया जाए। भोजन के उपरान्त दूधादि सेवन करना हो तो भोजन करने के कम से कम तीन घण्टे बाद किया जाए।

भोजन सदा सात्विक और ताजा हो। यथामात्रा, घी, मक्खन, फलों, सागों और सब्जियों का भी सेवन किया जाए। भोजन की मात्रा सब के लिए समान नहीं हो सकती। भोजन उतनी मात्रा सबके लिए समान नहीं हो सकती। भोजन उतनी मात्रा में किया जाए कि भोजन करने के उपरांत उदर तना हुआ प्रतीत न होकर कुछ खाली प्रतीत हो, शरीर में आलस्य न हो, फुर्ती हो, प्रकृति में भारीपन न होकर हलकापन हो। प्रत्येक साधक को अपने शरीर व श्रम के अनुसार प्रत्येक समय के पेय व भोजन की मात्रा निश्चित कर लेनी चाहिए। अपने दैनिक खान-पान का समय भी निश्चित कर लेना चाहिए। भोजन के समय प्रसन्नता और निश्चिन्तता होनी चाहिए। भोजन और भजन में शीघ्रता करने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। भोजन और भजन दोनों ही कार्यसदा बड़ी शान्ति के साथ करने चाहियें। पेय को जितने धीरे पिया जाएगा और भोजन के प्रत्येक ग्रास को जितना चबाकर निगला जाएगा, निरोगिता के लिए उतना ही अधिक उपयोगी होगा। प्रत्येक वस्तु का सुरोचकता के साथ सेवन कीजिए। भोजन बनाने तथा भोजन करने का स्थान अतिशय शुद्ध, पवित्र हो। भोजन करते समय कोई अटपटी, गन्दी, घिनौनी वस्तु अथवा क्रूर कुरुप प्राणी आँखों के सामने न हो। भोजन करते समय किसी की निन्दा, शिकायत, चुगली कदापि न करें। ऐसा करने से शरीर के रसों में विषमता और रक्त रज वीर्य में विकार उत्पन्न होता है। भोजन करते समय का विनोद और वार्तालाप नितान्त शुद्ध और निर्दोष हो।

सदा व्यस्त, गम्भीर, एकान्ती और कार्यरत रहने से शरीर के अवयव और स्नायु अविकसित और कुण्ठित हो जाते हैं। बिहार के निम्नलिखित साधनों से शरीर के समस्त कोश और सम्पूर्ण अंग सुविकसित और खिले रहते हैं। सतत विकास से ही शरीर में सम्पूर्णता सम्पादन होती है। शारीरिक सम्पूर्णता के बिना किसी भी सुसाधना में संसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

ध्यान रहे कि आहार के समान विहार भी नितान्त सात्विक, नियमित, मित और समयित होना चाहिए।

1. भ्रमण – प्रातःकाल का भ्रमण अमृतोपम है। भ्रमण सदा सर्वत्र प्रातःकाल में ही करना चाहिए। जाते-आते प्रातः भ्रमण न्यून से न्यून 5 किलोमीटर का तथा अधिक से अधिक 10 किलोमीटर का पर्याप्त होता हैं जल के किनारे अथवा उद्यान, पर्वत वा जंगल में भ्रमण करना परमोपयोगी है। जहाँ जलतट, उद्यान, पर्वत एवं अरण्य उपलब्ध न हों, वहाँ सड़क पर भ्रमण करना उपयुक्त होगा। हरे-भरे खेतों के किनारे किनारे भ्रमण करना उपयुक्त होगा। ग्रीष्म ऋतु में रेतील मार्ग का एवं घास पर नंगे पैर भ्रमण करने से नेत्र तथा रज, वीर्य के अनेक दोष दूर होते हैं। सूर्योदय से आधा घण्टा पश्चात् तक का समय भ्रमण के लिए सर्वोत्कृष्ट है।

2. विनोद – विनोद मानव-प्रकृति की स्वस्थता के लिए नितान्त आवश्यक है। विशेषतः साधक अथवा योगी के लिए विनोदशीलता दुर्गम घाटियों को सहजतया पार कराने वाली है। किन्तु यह स्मरण रह कि विनोद सदा शुद्ध, सात्विक, सरल, शिक्षाप्रद, उद्‌बोधक, शान्तिप्रिय तथा समाधान कारक हो।

3. हृदयदर्शन – यथावकाश और यथासमय दर्शनीय दृश्यों का अवलोकन करें। प्राकृत तथा कलात्मक दृश्यों के दर्शन से शरीर के आन्तरिक संस्थानों का प्रचुर विकास और संवर्धन होता है। देश-विदेशों के दर्शनीय और ऐतिहासिक स्थानों के अवलोकन से ज्ञान, विवेक और औदार्य की भी वृद्धि होती है। जलीय, पर्वतीय और अरण्यकीय दृश्यों के अवलोकन से बड़ी प्रफुल्लता तथा बड़ा आराम मिलता है।

4. प्रसन्नता – सदा प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट रहना परम योग हैं सन्तुष्ट, सतत योगी, योगी सदा सन्तुष्ट प्रसन्न रहता है। सम अवस्था का नाम ही प्रसन्नता अथवा सन्तोष है। मस्तिष्क के सन्तुलन और हृदय की शान्ति बनाय रखने से प्रसन्नता का अभ्यास हो जाता है। थोड़ा प्रयत्न करने से ही अन्तः सन्तोष और प्रसन्नवदनता की सिद्धि हो सकती है।

5. मुस्कान – ओष्ठों पर दिव्य मुस्कान सदा ही अठखेयिाँ करती रहे ऐसा अभ्यास कीजिए। केवल मानव को हँसने का अधिकार है। जैसे दाग़ देहलवी ने लिखा है–

या तो दिवाना हँसे या तू जिस पर तौफ़िक है।

वरना दुनियाँ मुस्करा सकता है कौन।।

6. व्यायाम – श्रमसाध्य व्यवसाय वालों के लिए भी व्यायाम करना नितान्त आवश्यक है। नित्य प्रातः कम से कम आधा घण्टा व्यायाम करना चाहिए। स्थूलकाय व्यक्तियों तथा रोग-विशेष का निवृत्ति के लिए योगासन-व्यायाम उपयोगी हैं। कृशकाय व्यक्तियों के लिए भटकीले व्यायाम (ऐसे व्यायाम जिनसे अंगों और जोड़ों पर झटके लगें) उपयोगी होती हैं। स्नायु-व्यायाम तथा मालिश सबके लिए एक समान लाभदायक हैं। पुरुषों के लिए अखाड़े में कुश्ती लड़ना भी पूर्ण व्यायाम है। स्त्रियों को कठोर व्यायाम कदापि न करने चाहिए। किशारावस्था (सोलह वर्ष की आयु) तक प्रातः भ्रमण और खेल-कूद ही पर्याप्त व्यायाम है। तैरना स्त्री, पुरुष और किशोर तीनों के लिए समानोपयोगी है।

7. विश्राम – श्रम के उपरान्त आवश्यकतानुसार विश्राम अवश्य करना चाहिए। जब भी झपकी-सी आए तब ही पन्द्रह मिनट की एक छोटी-सी निद्रा ले लेनी चाहिए।

8. अभिरुचि – अभिरुचि का अर्थ है सब ओर सबमें सुरुचि। खाना पीना, ओढ़ना, पहनना, पढ़ना, लिखना, खेलना-कूदना, मिलना, जुलना, साधना, उपासना, व्यवसाय, व्यापार, ज्ञान, ध्यान सब कार्य सुरुचिपूर्वक किए जाने चाहिए। रुचि, अभिरुचि, सुरुचि, उमंग, उत्साह से शरीर के कण कण में सरसता का संचार होता है, शरीर फूल के समान हलका फुलका रहता है।

9. निद्रा – निद्रा साधना का आवश्यक अंग है। इसकी कभी भूल कर भी उपेक्षा न करनी चाहिए। निद्रा की कमी से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, शरीर में शिथिलता आती है, शिर भारी रहता है, विचारशक्ति क्षीण होती है,

स्मरणशक्ति का ह्रास होता है और स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है। निद्रा की अधिकता से भी पाचनशक्ति मन्द पड़ जाती है, शरीर में प्रमाद बढ़ता है, कार्यचमता का ह्रास होता है, कामवासना बढ़ती है, स्वभाव में कटुता आती है, तेज का क्षय होता है, मस्तिष्क दुर्बल हो जाता है और बुद्धि स्थूल हो जाती हैं

रात्रि के दस बजे से प्रातः चार बजे तक छह घण्टे की बाढ़ निद्रा एक स्वस्थ साधक के लिए सुपर्याप्त हैं अवस्था-विशेष में दिन में घण्टा आधा घण्टा स्वल्प निद्रा लेने में कोई हानि नहीं। शरद् ऋतु में या तो रात्रि के नौ बजे से प्रातः चार बजे तक सोना चाहिए।

निद्रा गहरी और सात्त्विक होनी नितान्त आवश्यक हैं निद्रा के गहरी और सात्विक न होने से वे सब हानियाँ तो होती ही हैं जो निद्रा की कमी तथा अधिकता से होती हैं, तदतिरक्त धातुविकार और रक्तविकार भी होता हैं

मालिश और श्रम करने, नियमित समयित रहने, नियत समय पर सोने तथा चिन्तारहित होने से गहरी निद्रा आती हैं रात्रि को शयन से पूर्व अपने बिस्तर पर बैठकर प्राणिमात्र के लिए इष्टचिन्तन और ईशवन्दना कीजिए, आप की निद्रा सात्त्विक हो जाएगी। अगहन और असात्त्विक निद्रा से जीवन में विषमता की व्याप्ति होती है और अमंगलसूचक दुःस्वप्न आते हैं।

सीना, मस्तिष्क, कनपटी वा पेट पर हाथ रख कर सोना बहुत हानिकारक है। पीठ ऊपर करके उल्टा सोना बड़ा अनिष्टकारी है। सदा करवट से अथवा चित्ता सोना चाहिए। शरीर के प्रत्येक अवयव को लेटते ही एकदम ढीला छोड़ देना चाहिए। रात्रि-शयन भोजन करने के तीन घण्टे उपरान्त करना चाहिए। सर्वोत्तम यही है कि भोजन व दुग्धपान आदि सूर्याप्त से पूर्व ही कर लिया जाए। बिना तकिया लगाये सोना उत्तम है। यदि लगाया ही जाए तो तकिया एक अंगंल से अधिक मोटा न हो। निद्रा आने तक लेटे-लेटे आँखें मूंदकर ओ३म् का स्मरण और ध्यान करते रहने से योगनिद्रा की सिद्धि होती है।

10. मिताचार – जहाँ साधना का एक विशेष अंग है, वहाँ वह स्वतः एक परम योग है। साधक हृदयंगम करलें कि मिताचार परम योग है। मिताचार योग का आधार है। मिताचार योग का तन है। मिताचार योग का मूर्द्धा है। मिताचार योग का केन्द्र-बिन्दु है। मिताचार शरीर स्वास्थ्य और अध्यात्मयोग का मेरुदण्ड है। मिताचार शरीर और अध्यात्म का संयोजन करने वाली सुषुम्णा नाड़ी है। मिताचार के सिद्ध होने पर योगाचार, देहाचार, गृहाचार, शिष्टाचार, धर्माचार, कर्माचार मिताचारी ही समय, नियम और व्रत का पालन कर सकता है। मिताचार मित + आचार = ऋतु+आचार= सन्तुलित+आचार। साधक का प्रत्येक आचार मित होना चाहिए। ऐसा करने से शारीरिक क्षति तथा मानसिक ह्रास नहीं होता है और जीवन सुखी, शान्त, प्रसन्न रहता है, आयु सुदीर्घ होती है।

जिस प्रकार अति अधिकता सर्वत्र वर्जनीय है, उसी प्रकार अतिशय न्यूनता भी सर्वत्र वर्जनीय है। साधक को सदा मितमार्गी होना चाहिए। साधक की प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक गति प्रत्येक प्रगति मित होनी चाहिए। अति अधिकता और अतिशय अति-आचार है तो अति न्यूनता भी अति आचार है। अत्याचार अभिशाप है। मिताचार सर्वश्रेष्ठ वरदान है।

किसी ने एक महात्मा से प्रश्न किया, ''महाराज, प्रतिदिन कितने घण्टे सोना चाहिए?''

महात्मा ने सत्संगियों में से एक से पूछा, तुम्हारे विचार में प्रतिदिन कितने घण्टे सोना चाहिए? उत्तर मिला, 'आठ घण्टे'।

महात्मा ने एक दूसरे सत्संगी से वही प्रश्न किया। उत्तर मिला, चार घण्टे।

महात्मा ने पहले सत्संगी से कहा, ''तुम अपनी निद्रा में दो घण्टे की कमी करो।''

महात्मा ने दूसरे सत्संगी से कहा, ''तुम अपनी निद्रा में दो घण्टे की वृद्धि करो ।''

महात्मा ने दूसरे प्रश्नकर्ता की और देखा और कहा, 'नित्य छह घण्टे सोना पर्याप्त होगा ।'

अति अधिक और अतिशय न्यून के मध्य में मित का निवास है । प्रत्येक कार्य में साधक को अति अधिक और अतिशय न्यून के मध्य में स्थित रहना चाहिए । मिताचार में अमित आनन्द है ।

व्यायाम करना तो न अत्यधिक व्यायाम करना चाहिए,न अतिशय न्यून व्यायाम करना चाहिए । साधक को मितव्यायामी होना चाहिए ।

कार्य करना तो न अत्यधिक कार्य करना चाहिए, न अतिशय न्यून कार्य करना चाहिए । साधक को मितकर्मा होना चाहिए । साधक को सदा स्मरण रखना चाहिए । साधक को सदा स्मरण रखना चाहिए ।

अति आचार सर्वत्र वर्जनीय है । मिताचार सर्वत्र विहित है । ।

शरीर की प्रत्येक क्रिया एवं चेष्टा के साथ मन का योग होना परम आवश्यक है । मन की प्रसन्नता और मन की एकाग्रता जब शारीरिक क्रिया वा चेष्टा के साथ संयुक्त होती है, तब ही इस क्रिया वा चेष्टा का शरीर की निरोगिता तथा स्वास्थ्य पर उत्तम और अनुकूल प्रभाव पड़ता है ।

जब आप भोजन करें एवं किसी पेय का पान करें तो अपनी दृष्टि भोजन पर एवं पेय पर रखिए और मन की प्रसन्नता एवं एकाग्रता से भोजन एवं पेय का अवलोकन करके भोजन एवं पेय को सम्बोधन कीजिए । **''मित्रस्य त्वा चक्षुश समीक्षे''** – मैं तुझे मित्र की दृष्टि से देखता हूँ । तत्पश्चात् भोजन अथवा पान करते हुए उस भोजन अथवा पेय पर दृष्टि तथा मन को लगाइए और मन की अनुकूलता के साथ प्रसन्नतापूर्वक भोजन का पान कीजिए ।

भोजन एवं पेय पर अनुकूल और एकाग्र मन से दृष्टि न रखते हुए और खाद्य एवं पेय की निन्दा करते हुए वस्तु का सेवन करने से जठरग्नि मन्द पड़ जाती है और सेवन की गई वस्तु से जो रस बनता है उसमें विषमता और विष की मात्रा अधिक हो जाती है । भोजन बनाने में भी भोजन बनाने वाले व्यक्ति के मन का प्रभाव भोजन में प्रवेश करता है ।

भोजन बनाने वाला अपने मन की प्रसन्नता तथा एकाग्रता के साथ भोजन बनाता है तो वह भोजन सुपच, रसवर्धक और तृप्तिकारक होता है । साधकों को योग्य है कि भोजन का सब कार्य बाह्य पवित्रता के साथ-साथ मन की पवित्रता, प्रसन्नता और एकाग्रता से करें । माता जब अपने शिशु को अपने स्तन का दूध पिलाए तो मन की निश्चिन्तता, प्रसन्नता एवं एकाग्रता से पिलाए । भोजन बनाते और खाना खाते समय मन को मुदित एवं एकाग्र कर लेना चाहिए । भोजन बनाते बनाते समाचार-पत्र वा पुस्तक पढ़ते जाना एवं अन्य कार्यों में मन को इधर-उधर करना बहुत दूषित अभ्यास है । इसी प्रकार खाते खाते पढ़ना वा अन्य कार्य करते जाना स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक है ।

विहार में भी मन का पूर्ण योग होना चाहिए । जिस प्रकार का भी विहार आप कर रहे हैं, आपका मन आपकी इन्द्रियों के साथ उसी में लगा हुआ होना चाहिए । यदि आप प्रातः एवं सायं भ्रमण कर रहे हैं तो मन भ्रमण का आनन्द लेता हुआ ऐसा अनुभव करें कि आपका प्रत्येक कदम आपके शरीर को निरोग और स्वस्थ बनाता चला जा रहा है । यदि आप व्यायाम कर रहे हैं तो आप का मन व्यायाम का आनन्द लेता हुआ ऐसा अनुभव करे कि व्यायाम का प्रत्येक झटका आप की शारीरिक शिथिलता को दूर करता हुआ आपके शरीर को सुडौल और सुदृढ़ बना रहा है ।

निद्रा में भी मनोयोग परम लाभदायक हैं जब आप सोने जा रहे हों तो प्रथम अपने न में निद्रा की उत्सुकतापूर्ण सुरुचि जागृत कीजिए। बिस्तर पर लेटकर शरीर को नितान्त शिथिल छोड़ते हुए नेत्र बंद कर लीजिए और मन को निद्रा में मग्न और निमग्न कर लीजिए। ऐसा करने से आपको बड़ी सुन्दर निद्रा आएगी।

एक समय में एक ही कार्य करना और उसी में मन को पूर्णतया लीन कर देना ही पूरा मनोयोग है। प्रत्येक कार्य में अपने मन की सम्पूर्ण प्रसन्नता, प्रमुदितता और एकाग्रता से अन्तर्निहित करने का सद्‌भ्यास कीजिए। यह अभ्यास जहाँ आपके शरीर को निरोगता तथा स्वस्थता का सम्पादन करेगा, वहाँ आपके शरीर को निरोगता तथा स्वस्थता का सम्पादन करेगा, वहाँ दूसरी ओर आपके चित्त की वृत्तियों के निरोध में भी बड़ा सहायक होगा।

7. प्राणमय कोश (सूक्ष्म शरीर)

सम्पूर्ण अन्नमय कोश (शरीर) में प्राणमय कोश (प्राण) अन्तर्निहित है। प्राण ही जीवन है और प्राण ही आयुष्य (आयु बढ़ाने वाला) है। प्राण की समता और स्थिरता पर निरोगता और स्वास्थ्य का आधार है। प्राणी की सम और सुस्थिर गति से न केवल शरीर ही स्वस्थ और निरोग रहता है, अपितु बुद्धि, मन और चित्त भी समाहित रहते हैं, जठराग्नि यथावत् प्रदीप्त रहता है, रक्त और वीर्य का शोधन होता रहता है। सब कोश सुविकसित रहते हैं, रक्त का सुसंचार होता है, इन्द्रियाँ संयत और निर्विकार रहती हैं, सौन्दर्य और लावण्य स्थिर रहता है।

प्राण शरीर में सर्वत्र व्यापा हुआ है और शरीरगत समस्त चेष्ठाएं व क्रियाएं प्राण की सहायता से होती है। यद्यपि प्राण शरीर के भीतर सर्वत्र गति करता है, किन्तु नासिका से लेकर नाभि तक जो प्राण-भण्डार भरा रहता है, उसे प्राणमय कोश कहते हैं। प्राण के इसी कोश से समस्त शरीर में प्राण का संचार होता है। शरीरस्थ सम्पूर्ण प्राण ग्यारह विभागों में विभक्त है—प्राण, व्यान, अपान और आठ चक्र। श्वास द्वारा जो वायु अन्दर जाती है, उसे प्राण कहते हैं। श्वास द्वारा अन्दर जाने वाली वायु जितनी शुद्ध होती है, वह उतना ही जीवनप्रद और स्वास्थ्यवर्धक होता है। अन्दर प्रविष्ट होकर प्राण समस्त शरीर-सस्थान में व्याप कर गति करता है। प्राण की इस व्यापक गति एवं अवस्था का नाम व्यान है। व्यान सम्पूर्ण शरीर के मलकणों एवं विषाणुओं को लेकर प्रश्वास द्वारा तथा गुदा द्वारा बाहर निकलता है। उसे अपान कहते हैं। गुदा द्वारा अपान का निःसरण बहुत कम होता है। प्रश्वास द्वारा अपान का निःसरण सदा ही होता रहता है।

यह मानव शरीर आठ चक्र और नौ द्वारों वाली देवों की अजय नगरी है। इसमें ज्योति से ढका हुआ सुनहरी कोश है। यह स्वर्ग है क्योंकि आत्मिक आनन्द का भण्डार परमात्मा इसमें ही है। कबीर के शब्दों में :—

नवद्वारे का पिंजरा ता मे पंछी पौन।
रहने ते अचरज भया गए अचम्भा कौन।।

मानव शरीर रूपी मकान के द्वार सदा खुले रहते हैं और आत्मा निकलती नहीं यही आश्चर्य की बात है ।

वस्तुतः यह मानव शरीर देवों की अयोध्यापुरी है । अयोध्या का अर्थ है अजेय जिसे जीता न जा सके । हम देखते हैं कि योग के आठ अंगों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की भाँति मानव शरीर के प्राण के भी आठ चक्र हैं । इन आठ चक्रों का उल्लेख अग्रलिखित है ।

1. मूलाधार चक्र – इसका स्थान गुदामूल है । इसके संयम एवं शोधन से ब्रह्मचर्य की सिद्धि होती है ।

2. स्वाधिष्ठान चक्र – इसका स्थान मूत्रेन्द्रियमूल है ।

3. मणिपूरक चक्र – इसका स्थान नाभिकेन्द्र है । इससे शक्ति का संचार होता है ।

4. अनाहत चक्र – इसका स्थान हृदय है । इससे संकल्प दृढ़ता तथा आनंदशीलता की सिद्धि होती है ।

5. विशुद्ध चक्र – इसका स्थान कण्ठमूल है । इसमें अंतःकरण की निर्मलता सिद्ध होती है ।

6. जीवन चक्र – इसका स्थान नासिक मुखताल है । इससे दीर्घ जीवन, शारीरिक सुडोलता और ओजस्विता का संपादन होता है ।

7. आज्ञा चक्र – इसका स्थान भौंओं के मध्य में है । इससे इच्छाशक्ति और शासन क्षमता का विकास होता है ।

8. ब्रह्म चक्र (सहस्रार चक्र) – इसका स्थान कपाल है । इससे प्रज्ञा स्थित और मेधा जागृत होती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस मानव शरीर के नौ द्वार हैं, दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो नासिकाछिद्र, मुख, मलद्वार, मूत्रद्वार । इसमें बड़ा अमूल्य सुनहरी कोश है । इसमें दिव्य आत्मप्रकाश है । इसमें जाज्वल्यमान स्वर्ग है । वस्तुतः मानव शरीर एक अनमोल रत्न है ।

जब समस्त चक्र समता के साथ सुप्रवाहित रहने लगते हैं, तो सुषुम्णा के ऊर्ध्व और अधःदोनों स्रोता खुल जाते हैं । दोनों स्रोतों के खुल जाने पर ऊर्ध्व स्रोत से दिव्य (ऊपर एवं नीचे) शुभ्र ज्योत्स्ना का सरण (आगे बढ़ना)

तथा अमृत का निःक्षरण (रस रसकर न चुना) होता है, जिससे दिव्यदृष्टि और आनन्द की प्राप्ति होती है। अधः स्रोत कण्डलिनी धाम से सूक्ष्म प्राण तथा कुण्डल धारा का ऊर्ध्वसरण होता है, जिससे प्रकृतिजय, परम शान्ति और तृप्ति होती है।

प्राण के 11 विभागों को सुस्थिर सुप्रवाहित रखने की क्रियाएं हैं, उनका नाम प्राणायाम है। प्राणायाम के प्रकार असंख्य हैं। प्रत्येक रोग के शमन के लिए एक विशेष प्राणायाम है। ग्यारहों प्राणों को स्वस्थ, सुस्थिर और सुप्रवाहित रखने के लिए पृथक्-पृथक् प्राणायामों की विधियाँ हैं। स्वास्थ्य की सुपूर्णता के लिए भी कितने ही प्रकार के निश्चित प्राणायाम हैं। स्वास्थ्य सम्बद्ध समस्त प्राणायाम प्रातः सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख खड़े होकर करने चाहिए। यदि सायं समय भी प्राणायाम करना चाहें तो सूर्यास्त के समय (सूर्यास्त से कुछ पूर्व) सूर्याभमुख खड़े होकर ही करने चाहिए। शौचादि से निवृत्त होकर रिक्तोदर (खाली पेट) ही प्राणायाम किए जाते हैं। ग्यारह प्राणों को सुप्रवाहित रखने के लिए जो प्राणायाम किए जाते हैं वे भी प्रति-प्रातः अथवा प्रातः सायं क्रमशः सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सूर्याभिमुख खड़े होकर किए जाते हैं। रोगनिवारणार्थ जो प्राणायाम किए जाते हैं, वे रोगानुसार विशेष-विशेष स्थितियों में स्थित होकर किए जाते हैं।

स्वास्थ्य-सम्बद्ध जो प्राणायाम हैं उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनसे स्नायुओं का सुगठन और विकास होता है। कुछ ऐसे हैं जिनसे जठराग्नि प्रदीप्त और पाचनशक्ति सुतीव्र होती है। कुछ ऐसे हैं, जिनसे रक्त, वीर्य तथा धातुओं का पोषण एवं शोधन होता है। कुछ ऐसे हैं जिनसे वक्ष का विकास होता है। कुछ हैं जिनके करने से स्थूल शरीर हलका हो जाता है। कुछ ऐसे हें जिनसे शरीर का भार बढ़ाया जाता है। कुछ ऐसे हैं जिनसे शरीर का भार घटाया जाता है। प्रसन्नचित्तता के भी कतिपय प्राणायाम हैं। स्वभाव और शील को बदलने के भी प्राणायाम हैं। शरीर की लम्बाई बढ़ाने वाले भी कुछ प्राणायाम हैं। कुछ प्राणाायाम शरीर की लम्बाई घटाने वाले भी हैं। सौन्दर्यवर्धक प्राणायामों से सौन्दर्य तथा लावण्य की वृद्धि होती है। वीर्यस्तम्भन और वीर्यवर्धन के प्राणायाम भी है। अमोघवीर्यता तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य के लिए भी एक

सुनिश्चित प्राणायाम पद्धति है । बुद्धि को परिष्कृत तथा मन को संसिद्ध करने के प्राणायाम भी हैं ।

जीवन की प्रत्येक आवश्यकता के लिए नियत और निश्चित व्यायाम तथा प्राणायाम है । व्यायाम और प्राणायाम का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । ध्यान-सम्बद्ध प्राणायाम का लक्ष्य है प्राण का स्तम्भन (अवरोध) । प्राण के गति करते रहने से विचारों के व्यापार से अटूट सम्बन्ध है । साधकों ने स्वयं अनुभव किया होगा कि वे जब नेत्र, ओष्ठ, कर्ण बन्द करके ध्यान करने बैठते हैं और अन्तर्मुख होने का प्रयत्न करते हैं, तो मस्तिष्क जहाँ तहाँ घूमता है, कैसे कैसे बेढ़ंगे विचार आते हैं, अन्दर ही अन्दर कैसे कैसे अस्त व्यस्त दृश्य दिखाई देते हैं । किन्तु जब वे आँख कान खोले हुए बहिर्मुख होते हैं, तो ऐसा नहीं होता । क्या आप जानते हैं कि उसका क्या कारण है ?

मानव-मस्तिष्क में असंख्य स्मृतिकण हैं । मनुष्य जो कुछ देखता, सुनता और आस्वादन (चखना) करता है, उन सबका स्मृतिकणों पर चित्रण होता रहता है । जब मनुष्य नेत्र (चखना) श्रोत्र खोले हुए बहिर्मुख होता है, तब बाह्य शब्दों, दृश्यों और आस्वादनों के चित्र स्मृतिकणों पर खिंचते रहते हैं । स्मृतिकणों पर खिंचे हुये ये चित्र आवाज़ों, आकृतियाँ, वस्तुओं, घटनाओं तथा आस्वादनों के पहचानने और चिन्तन करने में सहायक होते हैं । ये स्मृतिकण प्राण के वेग से सोते जागते सदा ही गति करते रहते हैं । जब मनुष्य नेत्र, श्रोत्र, मुख बन्द करके ध्यान करना आरम्भ करता है, तब नवीन चित्रों का चित्रण बन्द हो जाता है और खिंचे हुए चित्र प्राण के वेग से मस्तिष्क में गति करते हुए मनरूपों विद्युत से पूर्णाकृत होकर दिखाई देते रहते हैं और उन्हीं के अनुसार विचार आते जाते हैं । ध्यान की अवस्था में यदि प्राण की गति का स्तम्भन कर दिया जाये, तो स्मृतिकण जहाँ के तहाँ स्तम्भित हो जाते हैं । मनोविद्युत् वातरहित दीपक के समान निश्चल हो जाती है, श्रवण और दर्शन के संस्थान निष्चेष्ट हो जाते हैं और उस अवस्था में ध्यान स्थिर हो जाता है । ध्यान की अनवरत स्थिरता से समाधि सिद्ध हो जाती है ।

प्राण को निश्चल करने के लिए अग्रलिखित अभ्यास अतिसरल और बहुत उपयोगी हैं :

(1) दीर्घ प्राण

नियत आसन में स्थित होकर नेत्र, श्रोत्र, मुख बन्द कर लीजिए और अन्तर्मुख होकर वरणीय भर्ग (दिव्य ज्योति) का ध्यान कीजिए। ध्यान करते हुए श्वास-प्रश्वास यथा सम्भव अतिशय दीर्घ करके लेते रहिए। एक मास इसी प्रकार कीजिए।

(2) शून्य प्राण

दूसरे मास के आरम्भ में शून्य प्राण का अभ्यास कीजिए। अन्तर्मुख होकर वरणीय भर्ग का ध्यान करते हुए शून्यता के साथ अतिशय दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेते रहिए। दीर्घप्राण और शून्य प्राण के अभ्यास में केवल यह अन्तर है कि दीर्घ प्राण के अभ्यास में श्वास प्रश्वास का शब्द अभ्यासी को सुनायी पड़ेगा, किन्तु शून्य प्राण के अभ्यास में श्वास-प्रश्वास का शब्द अभ्यासी को सुनाई नहीं देगा। एक मास इसी प्रकार कीजिए।

(3) प्राण-स्तम्भन

ध्यान करते हुए, जब प्रश्वास बाहर को जाए तो उसे अतिशय दीर्घ करके शून्यता के साथ बाहर जाने दीजिए जब श्वास अन्दर जाने लगे तो उसे शून्यता के साथ अन्दर जाने दीजिए और अन्दर भर चुकने पर उसे यथा आराम अन्तर्घट में रोके रहिए। पुनः पुनः ऐसा करते रहिए।

प्राण-स्तम्भन का अभ्यास करते-करते कालान्तर में प्राण ध्यानावस्था में स्वयमेव अतिशय प्रशान्त, निश्चल, अचल और स्तम्भित रहन लगेगा। एक ओर ध्यान स्थिर होने लगेगा और दूसरी ओर प्राण भी स्थिर होने लगेगा। अभ्यास करते करते ध्यान तथा प्राण दोनों ही निश्चल हो जाएंगे और समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

४. मनोमय कोश (सूक्ष्म शरीर)

मन हृतप्रतिष्ठ (हृदय में विद्यमान) है। मन का केन्द्र स्थल हृदयाकाश है। मन हमारे शरीर का प्रधानमंत्री है। वक्ष के नीचे और उदर के ऊपर जो अवकाश है, उसे हृदयाकाश कहते हैं। मनस्तत्त्व एक व्यापक तत्त्व है, जो सबमें सर्वत्र एकरस व्यापा हुआ है। मानव-शरीर में उसका केन्द्रस्थल हृदयाकाश है। मस्तिष्क के परिष्कार, पवित्र विचार, अनन्य चिन्तन, स्थितप्रज्ञता, मस्तिष्क की शीतलता से मन के संकल्पों का पर्याप्त परिपाक और परिष्कार होता है।

मन का कार्य संकल्प -विकल्प है। सिवाय सुषुप्ति और समाधि की अवस्था के मन सदा ही संकल्प विकल्प करता रहता है। सुषुप्ति की अवस्था में भी मन संकल्प शून्य नहीं होता है। सुषुप्ति अवस्था में मन और मन के संकल्प सुषुप्त हो जाते हैं। एवमेव समाधि की अवस्था में भी मन संकल्पशून्य नहीं होता है। समाधि की अवस्था में मन और मन के संकल्प निष्चेष्ट हो जाते हैं। सुषुप्ति अथवा समाधि की समाप्ति पर मन और मन के संकल्प जागरित और गतिमान हो जाते हैं।

मन को शिव संकल्प बनाना मन की परम साधना है। चिन्तन और संकल्प का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। संकल्प के अनुसार ही सदा चिन्तन होता हैं संकल्प का शोधन करके मन को शिव संकल्प बनाना साधक के लिए परम आवश्यक है। मन को शिव संकल्प बनाने के लिए प्रथम उपाय है मन के संकल्पों का सतर्कता के साथ निरीक्षण करते रहना। जब मन में अशिव संकल्प आएं तो उन्हें शीघ्र बाहर निकाल दीजिए। अशिव संकल्प के मन में प्रवेश करते ही उससे वेद के शब्दों में कहिए, परोपेहि मनस्पापं, मन के अशिव संकल्प परे चला जा। और आप देखेंगे कि वह बाहर निकल जाएगा। वेद की इस सूक्ति को आप कण्ठस्थ कर लीजिए।

मन की दूसरी साधना है मन की चंचलता को हटाकर मन को स्थिर करना। मन की चंचलता के मुख्य कारण हैं संशय, भय, उद्विग्नता, निराशा, घबराहट और आशुता। संशयवृत्ति को हटाने के लिए अपने अन्दर आत्मविश्वास उत्पन्न कीजिए। भ्रम और भ्रान्ति से भी संशय उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक वस्तु और विषय का यथार्थ ज्ञान सम्पादन करने से संशयवृत्ति का निर्मूलन होता है।

साहस के अवलम्ब से निर्भयता का अभ्यास हो जाता है । सहनशीलता और धैर्य के अभ्यास से उद्विग्नता का स्वभाव जाता रहता है । विफलता पर विफलता होने पर भी आशापूर्ण मन से पुनः पुनः साधना करते रहने से निराशा की वृत्ति का क्षय होता है । किसी भी अवस्था एवं परिस्थिति में अपने होश हवास बनाए रखने का अभ्यास कीजिए । इससे घबराहट की आदत जाती रहेगी । प्रत्येक कार्य शांतिपूर्वक सहज स्वभाव के साथ करने से आशुता की आदत जाती रहेगी । प्रत्येक कार्य शांतिपूर्वक सहज स्वभाव के साथ करने से आशुता की आदत जाती रहेगी ।

मन की तीसरी और अन्तिम साधना है मन को नितान्त निर्मल रखना । अन्न और आजीविका की पवित्रता से मन को निर्मलता में बड़ी सहायता मिलती है । उपयोग की सम्पूर्ण वस्तुओं को शुद्ध रखने से भी मनस्तत्त्व की शुद्धि होती है । मन की पूर्ण निर्मलता सत्य और निश्छल निष्कपट व्यवहार से होती है । व्यवहार-शुद्धि से मन की पूर्ण शुद्धि होती है । एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

हम मनमंदिर कर लें साफ, प्रभु जी अन्दर आएंगे ।
जब मनकी मैल मिटाएंगे, प्रभु जी मन को अति भाएगें ।
इस अन्तःकरण के अन्दर, प्रभु जी का सुन्दर मन्दिर ।
जब मंदिर होवे साफ, प्रभु जी आसन वहीं लगाएंगे । ।
साधना की नित पकड़ बहारी, गंदगी झाडें हम सब सारी ।
होवे कूड़ करकट साफ, प्रभु जी झलक दिखायेंगे ।
करे प्रेम से सच्चा नाद, प्रभु जी दरस दिखाएंगे ।
सभी ज्ञान की जोत जगाएं, प्रभु से हम ध्यान लगाएं ।
उदय हो जाएंगे भाग, जब प्रभुजी गोद बिठायेंगे ।
भगत प्रभु को विनय सुनाये, मन मेरा निर्मल हो जावे ।
हो जाएंगे दूर सभी संताप, नज़र प्रभु जी आएंगे ।

9. विज्ञानमय कोश (सूक्ष्म शरीर)

चित्त भी हृतप्रतिष्ठ है। सम्पूर्ण शरीर में जो चेतना है, उसका क्षरण (क्षीण होना) चित्त से होता है। चित्त आत्मचेतना का प्रसारक है। चित्त से चेतना का प्रसार वृत्तिरूप से होता है। मस्तिष्क और मन से चित्त का सतत सन्तत (सदा निरन्तर) साहचर्य रहता है। आत्मकोश से आत्मा जो आदेश प्रेषता है। वह प्रथम चित्त को प्रेषा जाता है। उस आदेश को चित्त मन के प्रति, मन मस्तिष्क के प्रति और मस्तिष्क इन्द्रियाँ के प्रति प्रेषित करता है। दूसरी ओर बाहर से जो संवेदन अथवा सन्देश इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होते हैं, उन्हें प्रथम इन्द्रियाँ मस्तिष्क के प्रति प्रेषित करती हैं। मस्तिष्क उन्हें मन के प्रति, मन चित्त के प्रति और चित्त आत्मकोश अथवा आत्मा के प्रति प्रेषता हैं जो संवेदन अथवा संदेश आत्मा अथवा आत्मकोश से बाहर की ओर प्रेषित होते हुए इन्द्रियों तक पहुँचते हैं, वे बाह्म वृत्ति द्वारा पहुँचाए जाते हैं। इन्द्रियों से चलकर जो संवेदन अथवा सन्देश आत्मकोश तक जाते हैं, वे अन्तःवृत्ति द्वारा ले जाए जाते हैं।

वृत्तियों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि बाह्य तथा अन्तःवृत्तियों का एक निरन्तर तांता एवं तार लगा रहता है। वृत्तियों का यह अन्तः और बाह्म गमनागमन निरन्तर होता रहता है। वृत्तियों के ये गमनागमन ही मन के संकल्पों को तथा मस्तिष्क के चिन्तनों को उत्तेजन देते हैं और वे ही इन्द्रियों की समस्त चेष्टाओं के कारण होते हैं दूसरी ओर संकल्प और चिन्तन वृत्तियों को उत्तेजित करते हैं। परस्पर के ये उत्तेजन जितने तीव्र और विषम होते हैं, अन्तःकरण उतना ही विक्षुब्ध, मलिन, विकृत, असन्तुलित तथा अशान्त रहता है। ये उत्तेजन जितने संयत और सम होते हैं, अन्तःकरण उतना ही समाहित, निर्मल, सन्तुलित तथा शान्त रहता है।

चित्त की समाहिति, निर्मलता तथा शान्ति में मन और मस्तिष्क के परिष्कार से पर्याप्त सहायता मिलती है। चित्त का पूर्ण परिष्कार चित्त की वृत्तियों के निरोध से होता है। चित्त की वृत्तियों का निरोध योगसाधना का एक महत्त्वपूर्ण साधन अथवा अंग है। विवेक एवं विरक्ति से चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध होता है। जहाँ विवेक होता है, वहीं विरक्ति होती है। जहाँ विवेक

का अभाव है, वहाँ विरक्ति हो ही नहीं सकती । विवेक मं विरक्ति का निवास होता है । जहाँ विवेक होता है, वहाँ विरक्ति अवश्यमे अैर स्वयमेव आ जाती है । प्रयत्न विवेक की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है । विवेक की सिद्धि पर विरक्ति छाया के समान पीछे पीछे चलती है । विवेक के अभाव में कभी कभी जो विरक्ति-सी आती है, वह क्षणिक होती है और शीघ्र नष्ट हो जाती है ।

विवेक के लिए कहीं कहीं ज्ञान तथा विरक्ति के लिए वैराग्य का प्रयोग किया जाता है । ध्यान से देखा जाए तो विवेक और ज्ञान में बहुत अन्तर है । ज्ञान से बहुत अन्तर है । ज्ञान से विवेक की सिद्धि होती है । ज्ञान साधन है और विवेक साध्य है । संसार के, संसार की घटनाओं के, संसार के भोगों के परिणामों की अनुभूति से जो ज्ञान होता है, उससे विवेक के सूर्य का उदय होता हैं विवेकसूर्य के समुदित रहने पर विरक्ति सुस्थिर रहती है ।

वैराग्य और विरक्ति में बहुत अन्तर है । वैराग्य की उत्पत्ति विषाद से होती है । विषाद के तिरोहित होने पर वैराग्य का उदय हो जाता है । विरक्ति का उदय विवेक से होता है । विवेक के सिद्ध होने पर विरक्ति हो जाती है । विवेक और विरक्ति के सिद्ध होने पर स्थिरता की प्राप्ति होती है ।

चित्तवृत्तियों के निराध के लिए विवेक की उपलब्धि परमावश्यक हैं स्वाध्याय और सत्पुरुषों का संग विवेकप्राप्ति में बहुत सहायक होता है । परन्तु विवेकप्राप्ति का अचूक उपाय तो अन्तदर्शन है । साधक को चाहिए प्रत्येक भोग, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक घटना को ऊपर से ही नहीं, गहराई में जाकर अन्दर से भी देखे और परिणाम पर गहनता के साथ विचार करे । ऐसा करने से उसे जो अनुभव होंगे, वे उसके विवेक-सम्पादन में अचूक और उसके विरक्ति निष्पादन में अमोघ सिद्ध होंगे । विवेक और विरक्ति के परिपक्व हो जाने पर चित्त की वृत्तियाँ पूर्णतया निरुद्ध हो जाती है । चित्तवृत्तियों के निरोध से आत्म-अवस्थिति होती है । आत्म-अवस्थिति से स्वरूप का दर्शन और ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ।

10. आनन्दमय कोश (कारण शरीर)

ज्योतिर्मय कोश भी हृत्प्रतिष्ठ है। हृदय ही आत्मा का अधिष्ठान (आधार) है। आत्मा हमारे शरीर का राष्ट्रपति है। योगसाधना में हृदय से तात्पर्य हृदय के उस भाग से नहीं है, जिसमें शरीर के रक्त का शोधन तथा आवागमन होता है। योग की परिभाषा में हृदय से तात्पर्य उस हृदयस्था अवकाश से है, जिसे हृदयाकाश कहते हैं और जो वक्ष के नीचे और उदर के ऊपर है। मानव-शरीर का अधिष्ठाता आत्मा हृदयाकाश के मध्य में स्थित जिस दिव्य कोश में निवास करता है, उसे ज्योतिर्मय कोश अथवा आत्मकोश कहते हैं। अथर्ववेद 10.2.31 में इसी ज्यातिर्मय कोश को हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः दिव्य कोश और ज्योति से आवृत स्वर्ग कहा है। वेद में हृदयाकाश के लिए अन्तरिक्ष शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

शरीर के ऊपर ग्रीवा के मूल तक का भाग द्यौ है। ग्रीवा मूल से नाभि तक का भाग अन्तरिक्ष है। नाभि से नीचे का भाग भूलोक है। जिस प्रकार सूर्य अन्तरिक्ष के मध्य में अपने आवृत पर स्थित होकर आवर्तन (चक्कर) करता हुआ अपनी रश्मियों से व्याप कर अन्तरिक्ष के अतिरिक्त द्यौ और भू को भी प्रकाशता है, उसी प्रकार आत्मसूर्य शरीरस्थ अन्तरिक्ष के मध्य हृदयाकाश में स्थित होकर अपनी रश्मियों से शरीरस्थ तीनों लोकों को व्यापता और प्रकाशता है। आत्मसूर्य की चिन्मय रश्मियों से प्रचेलित होकर ही चित्त समस्त शरीर में चेतना का प्रसार करता है। आत्मसूर्य की रश्मियों से रश्मित होकर ही मन संकल्प विकल्प करता है। आत्मसूर्य की रश्मियों से उद्‌बुद्ध होकर ही मस्तिष्क उद्‌बोधन करता है। आत्मसूर्य की रश्मियों से प्रेरित होकर ही ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान का सम्पादन तथा कर्मेन्द्रियाँ कर्म का निष्पादन करती हैं।

चित्त चेतना का करणमात्र है। चित्त में जो चेतना है वह आत्मा की है। मन मनन का करणमात्र है। मन में जो मनन है वह आत्मा का है। मस्तिष्क बोध का करणमात्र है। मस्तिष्क में जो प्रज्ञापन है वह आत्मा का ही है। मेधा में जो उद्‌बोधन और बुद्धि में जो बोधन है वह आत्मा का ही है। इन्द्रियाग्राम,

यह शरीर क्रिया का करणमात्र है । शरीर में जो गति, चेष्टा अथवा क्रिया है वह आत्मा की ही है । सूर्य अन्तरिक्ष में न कभी अस्त होता है, न उदय । यह तो सदा ही अपने आवृत पर पूर्णतया उदित रहता है । पृथिवी को सूर्य का उदय अस्त कहा जाता है । सूर्य ते अनवरत प्रकाश का प्रसारण करता रहता है । उसी प्रकार आत्मसूर्य शरीरस्थ अन्तरिक्ष में सदा सतत सन्तत समुदित रहता हुआ प्रकाशता रहता है ।

सूर्य के प्रति पृथिवी के परिक्रमण से जिस प्रकार दिन, रात और सन्धिकाल—पृथिवी पर ये तीन अवस्थाएं होती हैं, उसी प्रकार आत्मा के प्रति शरीर की संस्थिति से मानव शरीर में जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएं होती हैं जब बाह्यकरण तथा अन्तःकरण, दोनों आत्मा के अभिमुख होते हैं, तब शरीर में जागृति की अवस्था होती है । जब बाह्यकरण आत्मा के विमुख और अन्तःकरण आत्मा के अभिमुख होता है, तब शरीर की स्वप्नावस्था होती है । जब बाह्यकरण और अन्तःकरण, दोनों आत्मा से विमुख होते हैं, तब सुषुप्ति की अवस्था होती है ।

जागृति की अवस्था में अन्तःकरण तथा बाह्यकरण, दोनों ही बाह्य जगत् में कार्य करते हैं । स्वप्न की अवस्था में बाह्यकरण अन्तःकरण में लय हो जाता है और केवल अन्तःकरण अन्तर्जगत् में कार्य करता है । सुषुप्ति की अवस्था में बाह्यकरण तथा अन्तःकरण दोनों ही अन्तर्लीन हो जाते हैं और आत्मा उभ्य करणों की अन्तर्लीनता से आवृत होकर आत्मकोश आवर्तित (चारों ओर घूमना) होता है । जागृति में बाह्यतः सब कुछ ज्ञात होता है और मनुष्य अन्तःकरण से प्रेरित व संचेतित होकर बाह्य वस्तुओं का ज्ञान, प्रयोग तथा सेवन करता है ।

स्वप्न में मनुष्य बाह्य वस्तुओं के अभाव में ही अन्तर्वासना द्वारा अन्तर्जगत में बाह्य वस्तुओं का भोग व प्रयोग करता है, किन्तु ज्ञान का सम्पादन नहीं करता है । सुषुप्ति में नितान्त अचेत अवस्था होती है, जिसमें अन्तःबाह्य कुछ भी ज्ञात नहीं होता है ।

जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं से परे एक ओर अवस्था है, जिसे तुर्यावस्था कहते हैं। तुर्यावस्था अध्यात्मयोग की अन्तिम अवस्था है। इस अवस्था की प्राप्ति पर साधक पूर्ण योगी बन जाता हैं इसी प्राप्ति पर अन्य सब योग सहजतया स्वयमेव सिद्ध हो जाते हैं। इस अवस्था से युक्त योगी उस परम स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिसके परे और कुछ नहीं है। जिज्ञासा निवृत्ति के लिए यहाँ साधकों को तुर्यावस्था की कुछ कल्पना करा देना उपादेय होगा। तुर्यावस्था योगसिद्धि की वह अवस्था है जिसमें सतत आत्मजागरण रहता है। तुर्यावस्था की सिद्धि पर अन्य तीनों अवस्थाओं में योगी का आत्मा पाँचों से युक्त रहता हुआ भी उनसे अयुक्त रहता है और उनसे स्वयं प्रभावित और चालित न होता हुआ स्वयं उनको प्रभावित और चालित करता है। तुर्यावस्था और सुषुप्ति की तुलना से तुर्यावस्था का कुछ आभास हो सकता है।

सुषुक्ति में जहाँ पंच जड़वत् सुषुप्त हो जाते हैं, वहाँ आत्मा भी अपने ज्योतिर्मय कोश में सुषुप्तवत् हो जाता है। तुर्यावस्था में पाँचों पंच जड़वत् सुषुप्त नहीं होते, अपितु आत्मचेतना से युक्त रहते हुए स्थिर समाहित रहते हैं और आत्मा आत्मकोश में आत्म-अवसिति रहता हुआ आत्मजागरण से युक्त रहता है। सुषुप्ति में पांचों पंच आत्मचेतना से सर्वथा वियुक्त हो जाते हैं। तुर्यावस्था में पाँचों पंच आत्मचेतना से सुयुक्त रहते हुए आत्मस्थ रहते हैं। सुषुप्ति में पांचों पंच जड़रूप रहते हैं। तुर्यावस्था में वे ज्योतिर्मय, दिव्य, दीप्त और द्योतित रहते हैं। सुषुप्ति में चित्त की वृत्तियों अवरुद्ध हो जाती है। तुर्यावस्था में चित्तवृत्तियाँ निरुद्ध और संयत होती है। सुषुप्ति में पांचों पंच प्रकृति लीन रहते हैं। तुर्यावस्था में वे आत्मलीन रहते हैं। तुर्यावस्था के दो भेद हैं—एक समाधि और दूसरी अखण्ड समाधि।

समाधि की अवस्था में योगी आसन-विशेष में आसीन होकर धारण और ध्यान को स्थिर करके, आत्मना ब्रह्मस्थ होकर, नियत समय तक

समाधिस्थ रहता हुआ आत्मजागरण द्वारा आत्म-स्वरूप में स्थित रह कर ब्रह्म में साक्षात् सविष्ट रहता है। समाधि से निवृत्त होने पर योगी का जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं से सम्बन्ध रहता है और उसकी बाह्य अन्तः उभय प्रवृत्तियों प्रवृत्त रहती है। अखण्ड समाधि की अवस्था वह अवस्था है जिसमें योगी तीनों (जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति) अवस्थाओं को समाप्त करके सतत सन्तत आत्म-जागरण से युक्त रहता हुआ बिना किसी व्यवधान के अहर्निश (दिनरात) प्रतिक्षण ब्रह्मस्थ और ब्रह्मलीन रहता है और बाह्य चेतना से प्राणवत् निर्विषय रहता हुआ बाह्य कर्म करता है।

11. योगशील

योगाभ्यास आरम्भ करने से पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि साधक अपने जीवन में योगशील का सम्पादन करें। शील (प्रवृत्ति) और अभ्यास सदा साथ-साथ चलते हैं। जैसा जिसका शील होता है, वैसा ही उसका अभ्यास होता है। अभ्यास की स्थिति शील पर स्थित होती है। योगशील के बारह अंग हैं। सतत अभ्यास तथा सन्तत सतर्क आत्मनिरीक्षण द्वारा साधकों को इन्हें अपने जीवन का स्वाभाविक अंग बना लेना चाहिए।

1. निर्मलता

अपने अन्तःकरण तथा बाह्यकरण को नितान्त निर्मल रखिए। साधक का निवास-स्थान, निवास-स्थान में निहित सब वस्तुएं अतिशय शुद्ध रहें। साधक का शरीर तथा उसके दन्त केश, नख, वस्त्र, आसन, सब अतीव शुद्ध रहे। अन्यत्र जहाँ कहीं भी साधक को ठहरना पड़े, उसे उस स्थान को तथा वहाँ की वस्तुओं को स्वच्छ करवा करा लेना चाहिए। अपवित्र वातावरण में कहीं कदापि निवास न करें। न ही अशुद्ध और मलिन वस्तुओं को अपने उपयोग में लाएं। धर्मपूर्वक शुद्ध उपाय से धन कमाएं। अन्तःकरण की निर्मलता का सम्पादन बड़ी सतर्कता के साथ करना चाहिए। विषयविकार, ईर्ष्याद्वेष, चिन्ता क्लेश, निन्दा मत्सर, दुःख विषाद, भ्रम भ्रान्ति, भोग विलास, घृणा भय, लेप आसक्ति, शंका निराशा, अनिष्ट चिन्तन दुर्भावना, असत्य, चोरी, छल कपट से अपने अन्तःरण को सदा शुद्ध रखिए। मन, वचन, कर्म से कभी किसी को न सताइए।

2. मृदुता

अपने जीवन में मधुरता का सम्पादन कीजिए। कटुता और योग का कोई सम्बन्ध नहीं है। जहाँ कटुता है वहाँ योग का क्या काम? मधुरता के साथ सब व्यवहार कीजिए। अधोलिखित पद को गाया कीजिए और तदानुसार व्यवहार कीजिए–

मीठा हो मेरा मिलन, मीठा को मेरा बिछुड़ना।
वाणी से बोलूं मधुर, हो जाऊँ मधुसम मधुर।।

3. प्रसन्नता

सदा प्रसन्नचित्त और प्रसन्नवदन रहिए। जिनका अन्तःकरण निर्मल और जीवन मधुर होता है वे सदा फूलों की तरह खिले रहते हैं। सदा हँसते हँसाते और मुस्कराते रहिए। जैसे कि एक हिन्दी कवि के शब्दों में–

हिम्मत न हारिये, प्रभु न बिसारिये।
हँसते मुस्कराते हुए, ज़िन्दगी गुजारिये।।

4. आत्मीयता

सबसे आत्मीयता रखिए। प्राणिमात्र में आत्मदर्शन कीजिए। सबसे आत्मवत् बर्ताव कीजिए। किसी को ऊँचा और किसी को नीचा न समझिए। सब को अपना निज समझिए। सबसे स्नेह कीजिए। कोई आप को अपना शत्रु समझे तो समझे, आप सबको अपना मित्र समझिए।

5. शान्ति

सदा शान्त रहिए। रोष, विक्षोभ और उत्तेजना को अपने पास न फटकने दीजिए। कोई आप का अपमान, अनादर, तिरस्कार, अपयश, अपवाद, वैर, विरोध, अहित, अपकार, निन्दा, हानि कितना भी क्यों न करें, कभी भूल कर भी उत्तेजित न हो। मस्तिष्क को शीतल और हृदय को सम रखिए।

6. धैर्य

कितनी भी कठिनाइयाँ, आपत्तियाँ, बाधाएँ मार्ग में क्यों न आएं, विचलित न हूजिए। यात्रा कितनी भी दुस्तर और लम्बी क्यों न हो, चले चलिए, चले चलिए। स्मरण रखिए, प्रत्येक पग के साथ आप की यात्रा तय होती जा रही है। साधना जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतने ही अधिक धैर्य की आवश्यकता है।

साधक को चाहिए कि कभी न हो निराश।
है यात्रा नहीं कि जो चलने से तय न हो।।

साधन परम है साधना का तेरा धैर्य ।
साधक नहीं वह जिसमें अतुल धैर्य न हो । ।

सब कुछ सहते सहारते हुए साधना के पथ पर आगे ही आगे बढ़े चलिए ।

7. संयम

संयम अमोघ साधन है । संयमी बनिए । जिसमें संयम नहीं है वह किसी व्रत नियम का पालन नहीं कर सकता । यदि आप गृहस्थी हैं तो दाम्पत्य जीवन में संयम का अवलम्ब कीजिए । गृहस्थ में यदि पूर्ण ब्रह्मचर्य सम्भव नहीं है तो यथासम्भव जितना बने उतना संयम अवश्य रखिए । प्रत्येक कार्य में प्रत्येक इन्द्रिय के व्यवहार पर संयम कीजिए । विचार व्यवहार पर संयम रखिए ।

8. सरलता

अपने भोजन, वसन और व्यवहार में सरल रहिये । मिलना, जुलना, सेवा, आतिथ्य, सबमें सरलता रखिए । सरलता साधक का अद्वितीय भूषण है ।

9. विवेक

विवेकी बनिए । विवेक परम प्रकाश है । कोई घटना नई नहीं है । कोई बात नई नहीं है । जैसे विद्यानंद ''विदेह'' लिखते हैं–

चिन्ता विदेह क्या है यदि कुछ नहीं रहा ।
अस्थिर है दृश्य सारे, स्थिर कुछ भी यहाँ नहीं । ।

संसार की कोई वस्तु न साथ आई है, न साथ जाएगी । जगत् के सब रिश्ते शरीर की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाएंगे । कर्त्तव्य कर्मों को करते हुए प्रत्येक पग लक्ष्य की ओर ही रखते चलिए ।

10. एकाग्रता

प्रत्येक कार्य को भगवत्सेवा जान कर कीजिए और एकाग्रता के साथ कीजिए। सदा अन्तर्मुख रहिए और अपनी भावना से सर्वदा प्रभु में समाहित रहिए। बाह्य विषयों से मन को हटाइए।

11. अध्यवसाय (कठोर परिश्रम)

बेकार कभी न बैठिए। जीवन का एक-एक क्षण अमूलय है। अपनी आयु के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग कीजिए। क्योंकि पाँच चीजें कभी भी वापिस नहीं आती हैं। (1) समय, (2) साँस, (3) सम्मान, (4) शब्द, (5) कमान से निकला हुआ तीर। अतः इन सब का सावधानी से उपयोग कीजिए। तभी आप का जीवन सफल एवं सार्थक होगा। उपयोगी कार्यों में सदा व्यस्त रहिए। नियमित जीवन बनाइए। विफलता पर विफलता होने पर पुनः पुनः अध्यवसायपूर्वक साधना किए जाइए।

12. ध्यान

परमात्मा को अनुभव करने के लिये उसके गुण, कर्म, स्वभाव का निरंतर चिन्तन करना किन्तु बीच में किसी अन्य वस्तु या विषय का स्मरण न करना ध्यान कहलाता है। वस्तुतः धारणा का पक्का होना ही ध्यान है। ध्यान करने वाला जब उस ध्येय वस्तु से अपने मन की सर्वथा एकाग्रता अनुभव करने लगता है तब विधि यह है कि व्यक्ति अपनी जीभ मत हिलावे। जब तक जीभ नहीं हिलेगी ध्यान लगा रहेगा। इसके विषय में महर्षि कपिल लिखते हैं–

ध्यानं निविषयं मनः –सांख्य दर्शन 6.25

जब आसन स्थिर हो जाता है, तब बाहरी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को छोड़ देती हैं। परन्तु विषयों में वासना होने के कारण मन की चंचलता नहीं रुकती। इसलिये मन को विषयों से हटा कर आत्मचिन्तन में लगाना चाहिये, जब मन विषयवासना से हट जाता है तभी एकाग्रता हो पाती है, उसी अवस्था को ध्यान कहा जाता है। ध्यान तीन प्रकार का होता है– (1) स्थूल ध्यान, (2) ज्योति ध्यान, (3) सूक्ष्म ध्यान। ध्यान के दो मुख्य कार्य हैं–आत्मशुद्धि और आत्मसमर्पण।

अनेक व्यक्ति ध्यान करते हैं। यत्र तत्र ध्यान की कक्षाएँ भी लगाई जाती हैं। इससे प्रतीत होता है कि ध्यान ऐसी सुलभ क्रिया है जिसे कोई भी व्यक्ति कभी भी लगा सकता है। ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः हमारी ध्यान से पूर्वावस्था धारणा ही परिपक्व नहीं होती तो ध्यान कैसे लगेगा? यदि ध्यान लग जाए तो इससे अगला कदम ही समाधि का हैं परिपक्व ध्यानी को समाधि दूर नहीं होती। न तो समाधि सबकी लग सकती है तथा न ही ध्यान। पतंजलि ने ध्यान के निम्नलिखित 9 विघ्न बतलाये हैं – (1) रोग, (2) चित्त की अकर्मण्यता, (3) संशय, (4) प्रमाद, (5) आलस्य,(6) प्रविरति, (7) विपरीत ज्ञान, (8) अलब्ध भूमिकरण अर्थात् चित्त का एकाग्र तथा निरुद्ध न होना। क्षिप्त, मूढ़ तथा विक्षिप्त चित्त समाधि के लिये सर्वथा अयोग्य है। (9) अनावस्थितत्व अर्थात् चित्त का समाधि की भूमि अवस्था में स्थिर न रहना।

ध्यान लगाते समय इन विघ्नों से ऊपर होना ही चाहिये अन्यथा अभीष्ट फल नहीं मिलेगा। आजकल तो क्षिप्त तथा विक्षिप्त चित्त वाले भी ध्यान लगाने बैठ जाते हैं।

ध्यान का स्थान योगांगों में 7वाँ है। इससे आगे है समाधि। हम यम, नियम, प्राणायाम, आदि योग के प्राथमिक अंगों की सर्वथा उपेक्षा करके एकदम ध्यान में पहुँचने का यत्न करते हैं तो ध्यान कैसे लगेगा। पतंजलि कहते हैं कि योग के सारे अंगों के अनुष्ठान से ही अशुद्धि का क्षय तथा ज्ञान का प्रकाश होता है। अशुद्धि का क्षय किये बिना ध्यान लग ही नहीं सकता। यह अशुद्धि शरीर तथा मन दोनों प्रकार की है। इनके अतिरिक्त भी ध्यान में मन न लगने के कारण भी निम्नलिखित हैं।

ध्यान में मन क्यों नहीं लगता? इसलिये कि आप लगाना नहीं चाहते। केवल आँखें बंद कर बैठकर खानापूर्ति करना चाहते हैं। क्या कभी आपने सोचा कि भोजन में मन क्यों नहीं लगता? आप कहेंगे खूब लगता है। इच्छापूर्वक भरपेट खाते हैं। ठीक है, किन्तु कभी न कभी तो ऐसा होता ही होगा कि भोजन करने को आप का मन न करे। यह कब होता है? जब पेट में विकार हो तथा पेट में गया हुआ पहला भोजन न पचा हो, तो कितना भी स्वादिष्ट भोजन आप के सामने रख दिया जाये, उसे खाने की इच्छा नहीं होगी। यही अवस्था मन की है। शरीर का भोजन खाद्य पदार्थ हैं तथा मन का भोजन चिन्तन, मनन, ध्यान हैं। मन यहाँ खूब रमेगा, यहाँ से डिगेगा नहीं। किन्तु कब, जब कि उसमें उसी प्रकार की इच्छा हो जैसी कि भोजन से पूर्व शरीर में थी। मन में ऐसी भूख रहने पर निश्चित् रूप से आप का मन ध्यान में लगेगा, अन्यथा नहीं। इसलिये ध्यान का आरम्भ करने से पूर्व मन में ध्यान के लिये भूख, इच्छा उत्पन्न कीजिए, मन अवश्य लगेगा अन्यथा ध्यान के नाम पर आँखें बंद करके बैठने का कोई लाभ नहीं। हाँ, वृत्तियों का थोड़ा बहुत केन्द्रीकरण तो इससे हो जायेगा, जो लौकिक जीवन में तो काम देगा किन्तु अध्यात्म में आप की प्रगति नहीं कर पायेगा।

चाहे आप भोजन स्वच्छ स्थान पर बैठकर करते हैं या पाँच सितारा होटल में हो तो क्या ही बात है? वहाँ मन प्रसन्न होता है। गन्दे स्थान पर बैठकर आप भोजन नहीं कर सकते। ऐसे ही ध्यान भी कहीं भी बैठकर नहीं

किया जाता। एकान्त तथा शुद्ध वातावरण में ही ध्यान लगेगा। भोजन करते समय यदि मांगने वाले आ जायें तो भी आप का ध्यान भोजन से हट जायेगा तथा चाहेंगे कि ये यहाँ से चला जाये। इसी प्रकार ध्यान करते समय एकान्त होना अति अनिवार्य है। वहाँ कोई शोर शराबा न हो तो, तभी ध्यान लग पायेगा, अन्यथा नहीं। इस प्रकार एकान्त तथा स्वच्छ वातावरण ध्यान के लिये अत्यावश्यक है।

भूख भी है, वातावरण तथा स्थान भी शांत एवं शुद्ध है, तब भी सम्भव है कि ध्यान न लगे। किसलिये? इसलिये कि ध्यान में जाने से पूर्व मन में उत्कण्ठा भी होनी चाहिये। जैसे भूख तो आप को है, किन्तु किन्हीं आवश्यक कार्यों के कारण उन्हें छोड़ कर भोजन नहीं कर सकते, तो ऐसी भूख से भी कोई लाभ नहीं। भोजन के समय सभी कार्यों को छोड़ना ही होगा। इसी प्रकार यदि आप ध्यान का प्रयोग करेंगे तो अवश्य लाभ होगा।

निश्चित् समय भर पेट खा लेने पर भी दूसरे समय भूख लग जाती है। यदि कहीं सभा आदि में बैठे हों तो भोजन का समय होते ही घड़ी की ओर निगाह चली जाती है। इसी प्रकार ध्यान के समय का भी नियम है। वह नियमित होना चाहिये। ऐसा नहीं कि आज 5 बजे कर लिया तो कल 7 बजे। ऐसा करने से समय की निरन्तरता नहीं बनेगी तथा जब समय मिले, तभी ध्यान के लिए बैठ जाने से लाभ नहीं होगा। निश्चित स्थान के समान ध्यान का निश्चित समय भी होना चाहिये। ऐसा होने से वह समय आने से पहले ही आप का ध्यान नित्य किये जाने वाले ध्यान की ओर चला जायेगा।

निश्चित समय पर स्वच्छ एवं शांत वातावरण में ध्यान के लिये बैठ गये तो क्या इतने मात्र से ध्यान लग जायेगा? नहीं, अभी तो बहुत कुछ शेष है। क्या? आप शान्त वातावरण में शान्ति से भोजन कर रहे हैं, किन्तु तभी नाचने कूदने वाले आप के सामने आ जायें। उनकी कला देखने को आप उत्सुक हो जायें। तो या तो भोजन को बीच में ही छोड़ देंगे या अनमने ढंग से शीघ्र शीघ्र समाप्त कर लेंगे क्योंकि इस समय आप का मन उस तमाशे को देखने में है। यही अवस्था ध्यान की हैं ध्यान में बैठते ही आप का मन इधर-उधर भागने लगेगा। किधर? उधर ही कि जिस कार्य से, जिस वातावरण से आप अभी-अभी निकल कर आ रहे हैं। लाभ हानि आदि से युक्त वातावरण से

निकलकर यदि हम एकदम ध्यान में बैठ जाते हैं तो ध्यान नहीं लगेगा। इसके लिये आसन ग्रहण करने से पूर्व ही हमें अपनी हानि लाभ की बातों को छोड़ना होगा। अन्यथा आँखें बंद करके बैठने पर भी मन अपने व्यापार आदि में उलझा रहेगा, ध्यान नहीं लग पायेगा।

शुद्ध स्वच्छ स्थान में बैठे निश्चिन्तता से एकान्त में भोजन कर रहे हैं, किन्तु यदि वहाँ कमरे के अन्दर से ही चींटियां आदि निकलकर शरीर पर चढ़ने लगें तो भी भलीभाँति भोजन नहीं कर सकेंगे। यही अवस्था ध्यान की है। ध्यान करने तो हम बैठ गये, किन्तु मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों की एक पूरी सेना खड़ी है, जो ध्यान का आरम्भ करते ही सक्रिय हो जाती है। इसके सक्रिय होते ही मन में भाँति-भाँति के विकार, भाँति-भाँति के दुर्विचार सक्रिय हो जाते हैं। अब तक मन में ये प्रसुप्त (सोये हुए) की दशा में थे।

जिस प्रकार बिल में पानी डालते ही उसमें रहने वाला चूहा आदि प्राणी बिल से बाहर निकल आता है, उसी प्रकार ध्यान का मृदु तथा शीतल साथ पाते ही मन में पहले से ही छिपे हुए काम, क्रोध आदि भाव एक-एक करके तथा कभी-कभी संयुक्त रूप में भी प्रकट होने लगते हैं। आवश्यक नहीं कि ये भाव विद्रोही ही हों। इनका स्वरूप प्रेम एवं मैत्रीपूर्ण भी हो सकता है। अपने प्रियजन की स्मृति, बच्चों की चिन्ता या घर के ही किसी अन्य कर्म में लगाव होने पर भी ध्यान नहीं लग पायेगा। इसलिये संसार में फैले विचारों को ध्यान में जाने से पूर्व ही समेट लीजिये। इसी के प्रतीक स्वरूप संध्या में बैठते ही सर्वप्रथम सिर की चोटी में गांठ लगाई जाती है। इसका भाव यही है कि मैं अब तक बाह्य विषयों में बिखरी हुई वृत्ति को समेट कर एक स्थान पर प्रेणीभूत करता हूँ। इस प्रकार जिस स्थान पर धारणा की जा रही है, केवल उसी का ध्यान, ध्यान करते समय रहेगा, अन्य का नहीं। अर्जुन को द्रौपदी के स्वयंवर में ऊपर खंभे पर बंधी काग़ज़ की मछली की आँख ही दिखाई दे रही थी, क्योंकि निशाना वहीं लगाना था। इसी प्रकार जब आपको केवल अपना लक्ष्य ही दिखलायी पड़े अन्य कुछ नहीं, तब ध्यान अवश्य ही लगेगा।

व्यक्ति शीघ्र सीधे ही ध्यान में जाने का प्रयास करते हैं। सोचते हैं कि आँखें बंद करके बैठें तथा एकदम ध्यान लग जाये। यह सम्भव नहीं। हां, बाह्य वातावरण से हटकर उस समय थोड़ी देर तक शांत सा रहने का अनुभव

आपको होने लगेगा । किन्तु यह ध्यान नहीं है । जिस प्रकार भवन की छत पर जाकर आप शीतल वायु तथा निर्मल आकाश में विचरण करते हुए सुख का अनुभव करते हैं, मोक्ष भी कुछ इसी प्रकार का है । सांसारिक बन्धनों को, वासनाओं को, कार्यों को क्रमशः समाप्त करते हुए जब इस धारणा तथा ध्यान में प्रवेश करेंगे तो अगला कदम ही समाधि है । ठीक उसी प्रकार जैसे कि सीढ़ी के अन्तिम ऊपर वाले डंडे से ऊपर मकान की छत ही है, जिसके ऊपर खुला एवं विस्तृत आकाश है । भवन की छत पर जाने के लिये हम क्रमशः एक-एक डंडे पर ही तो पैर रखकर ऊपर चलते जाते हैं, न कि प्रथम बार में ही बीच वाले या अन्तिम डंडे पर पैर रख लेते हैं ।

यही प्रकार हमें ध्यान में अपनाना होगा । योग दर्शन में ध्यान से पूर्व सात अंग और भी हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा धारणा । इन्हें पार किये बिना सीधे ही ध्यान में प्रवेश करना सर्वथा असम्भव है । अतः ध्यान लगाने से पूर्व योग के इन अंगों का अभ्यास भी कर लेना चाहिये जोकि परमावश्यक है । हमें ध्यान बहुत सरल जान पड़ता है, जबकि इन अंगों का पालन कठिन जान पड़ता है । कठिनता से सुगमता की ओर चलना मानव का स्वभाव है । इसीलिये हम केवल ध्यान की बात करते हैं, इन पूर्ववर्ती अंगों की नहीं ।

यदि ध्यान इतना सरल होता तो पतंजलि को इन पूर्ववर्ती अंगों का वर्णन करने की आवश्यकता ही नहीं थी । आगे के अंगों आसन, प्राणायाम आदि से साधक के शरीर तथा मन पूर्ण रूप से शुद्ध एवं निरोग हो जाते हैं । इसके उपरांत ही वह धारणा में प्रवेश का अधिकारी होगा, इससे पहले नहीं । शुद्ध पवित्र मन वाला व्यक्ति ही धारणा की कोई सिद्धि कर सकता है । धारणा परिपक्व होने पर ही ध्यान में प्रवेश हो सकता है । इससे पूर्व नहीं । वस्तुतः ध्यान मानव जीवन में सफलता के लिये परमावश्यक है ।

13. समाधि

स्वामी शिवानन्द लिखते हैं–

Samadhi is Union with the Lord. It is super conscious experience. It is Adhyatmic Anubhava, Samadhi or ecstasy is blissful union. The mind melts in the eternal or Atman like salt in water or comphor in flame. It is a state is pure conciousness. –Bliss Divine P 493

समाधि प्रभुमिलन का नाम है। यह अधिक चेतनायुक्त अनुभव है। यह आध्यात्मिक अनुभव है। समाधि या अतिआनन्द धन्य मिलाप है। जिसमें मन प्रभु या आभा ऐसे मिल जाता है जैसे जल में नमक या चिंगारी में मुश्ककपूर यह शुद्ध ज्ञान की अवस्था होती है।

समाधि के तीन प्रकार हैं–ज्ञानसमाधि, भावसमाधि और ध्यानसमाधि। परमात्मा और प्रकृति के निर्भ्रम और निर्भ्रान्त ज्ञान का नाम ज्ञान समाधि है। इन तीनों के ज्ञान के साधन हैं–पदार्थ विद्या, स्वाध्याय और सत्संग। पदार्थविद्या के अनुशीलन से प्रकृति का स्वरूप समझ में आता है। आत्मा और परमात्मा के ज्ञान के लिए केवल स्वाध्याय ही पर्याप्त नहीं है। जिन ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जाता है उनके अक्षर सजीवता से शून्य होते हैं। जीवित सत्पुरुषों के सम्मुख बैठकर उनके जिन वचनों का श्रवण किया जाता है, उनमें सजीवता होती है। स्वाध्याय की अपेक्षा सत्संग का कहीं अधिक महत्त्व है। ग्रन्थों के शब्द जड़ हैं। सत्पुरुषों के मुख से निकले हुए सजीव शब्द आत्मचेतना लिए हुए होते हैं। स्वाध्याय करते हुए सत्पुरुषों के उपदेशों का श्रवण और उनके साथ वार्तालाप करके परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के स्वरूप को अच्छी प्रकार समझे बिना योगाभ्यास में यथावत् प्रगति नहीं हो सकती। इन तीनों के तत्त्व-ज्ञान से युक्त होकर साधक को शुद्ध विवेक की प्राप्ति होती है। शुद्ध विवेक द्वारा आत्मना आत्म-अवस्थित होकर ब्रह्मस्थ रहते हुए सब कर्म करना ज्ञानसमाधि है। ज्ञानसमाधि में त्रित –अहम्

(मैं) त्वम् (तू) (ब्रह्म) और तत् (वह सृष्टि, प्रकृति)—तीनों का पृथक्-पृथक् भान रहता है ।

ब्रह्म महत् (सर्वव्यापक) है । आत्माअणु है प्रकृति परमाणु है । ब्रह्म सब अणु-परमाणुओं में व्यापक है । और सब अणु ब्रह्म में निहित है । रूपं रसं प्रतिरूपो बभूव । ब्रह्म रूप-रूप में प्रतिरूप हो रहा है । सबमें सर्वत्र उसी का सौन्दर्य झलक रहा है । सब में सर्वत्र उसी की ललित ललाम लीला का सदर्शन हो रहा है । यह सब ब्रह्ममय है । इस सबमें जो कुछ हो रहा है । यह सब ब्रह्ममय है । इस सबमें जो कुछ हो रहा है, उसी की नियति और नियामकता से हो रहा है । मुझ में सब कुछ वह स्वयं ही कर रहा है । इस भावना से भावित होकर ब्रह्मलीन रहते हुए सब कर्म करना भावसमाधि है । भावसमाधि में सबमें ब्रह्म ही ब्रह्म भासता है । भाव समाधि में द्रष्टा आत्मा को अपना तथा ब्रह्म का, दो का ही भान होता है । प्रकृति और प्रकर्ता का भेद मिट जाता है । अहम् त्वम् मुख-समुख रहते हैं । यही द्वैतवाद है ।

ज्ञानसमाधि से भावसमाधि की, और भावसमाधि से ध्यानसमाधि की सिद्धि होती है । ध्यानसमाधि में ब्रह्म ही ब्रह्म भासता है । अहम् त्वम् और तत् का तत्त्वमहम् (तत्+त्वम्+अहम्) हो जाता है । ध्याता आत्मा प्रकृति से सर्वथा पृथक् हुआ ब्रह्मलीन और ब्रह्मरूप हो जाता है, जैसे कोयला अग्नि में प्रविष्ट होकर अग्निरूप हो जाता है । ध्यानसमाधि से निवृत्त होकर आत्मा पुनः आत्मस्वरूप में स्थित होता है, जैसे कोयला अग्नि से पृथक् होकर पुनः कोयलारूप में प्रकट होता है । ध्यानसमाधि में ही आत्मा कहता है, अहम् ब्रह्मस्मि मैं ब्रह्म हूँ, जिस प्रकार अग्निस्थ कोयला कहता है, अहमग्निरस्मि — मैं अग्नि हूँ । यही एकत्व, कैवल्य अथवा अद्वैतवाद है ।

14. ब्रह्मस्वरूप

सवितु : देवस्य भर्गः वरेण्यम्, सविता देव का भर्ग वरेण्य है । भर्ग का अर्थ होता है तेज, प्रकाश, सौन्दर्य । एक शब्द के ये तीन अर्थ सर्वथा पूरक हैं। तेज और प्रकाश के संयोग का नाम ही सौन्दर्य है। तेज+प्रकाश=सौन्दर्य । सौन्दर्य =तेज+प्रकाश । वरेण्य का अर्थ है वरणीय, ग्रहणीय, प्रापणीय । ब्रह्म सर्वसौन्दर्य है । सर्वसौन्दर्य ब्रह्म में ही है और ब्रह्म का ही है । ब्रह्माण्ड में, प्रकृति में, जड़-चेतन में, सर्वत्र जो सौन्दर्य है, वह सब ब्रह्म के सौन्दर्य की छाया, छवि छटा, आभा, अक्समात्र है ।

उषा की लाली से नीला आकाश लाल-लाल हो जाता है । आकाश से उचट कर (अलग होकर) उषा की लाली जहाँ जिन पदार्थों पर पड़ती है, वे भी उषा की ललित ललाम (सुन्दर श्रेष्ठ) लालिमा से अरुण दिखाई पड़ते हैं । उषा की लालिमा आकाश से उचट कर कमरे की किवाड़ों में जड़े श्वेत कांच के पटलों पर पड़ती है और वे भी लाल लाल प्रतीत होते हैं । कांच के श्वेत पटलों से पुनः उचट कर लालिमा कमरे के अन्दर रखे हुए श्वेत कांच के पात्रों व पदार्थों पर पड़ती है और ये भी लालिमायुक्त हो जाते हैं ।

इसी प्रकार परम सुन्दर परब्रह्म का परम सुन्दर सौन्दर्य उसके अपने निज धाम अथवा निज स्वरूप में ही सन्निहित है । इसके अपने निज धाम एवं निज स्वरूप से उचट कर उसके सौन्दर्य की जो आभा सकल ब्रह्माण्ड में छटकती है, उसकी छटा-छवि-छाया मात्र से यह सब सुन्दर हो रहा है । अखिल ब्रह्माण्ड का अखिल सौन्दर्य उस परम सौन्दर्य की केवल उचटन है ।

शुद्ध श्वेत जल से पूरित शुद्ध श्वेत पत्थर के एक छोटे से विशुद्ध तालाब के किनारे एक राजा आकर बैठा । उसने देखा बहुत सुन्दर अमूल्य मोतियों की एक सुन्दर माला तालाब के तल में पड़ी हुई है । राजा ने सोचा, यह सुन्दर माला मेरी सुन्दर रानी की सुन्दर ग्रीवा में बड़ी सुन्दर प्रतीत होगी । राजा न अपने वस्त्र उतार कर किनारे पर रख दिए और कोपीन पहन कर तालाब के तल में कई गोते लगाए । किन्तु माला हाथ न लगी । अपने आश्रम में दूर खड़ा हुआ एक साधु इस दृश्य को देख रहा था । साधु राजा के निकट आया और मुस्कराते हुए तालाब के तट पर स्थित एक वृक्ष की टहनी की ओर

संकेत किया । राजा ने देखा कि असली माला उस वृक्ष की एक टहनी पर टंगी हुई है और तालाब के तल में जो माला दिखाई पड़ रही थी वह माला न थी, टहनी पर टंगी हुई माला की छाया मात्र थी । वह पेड़ पर चढ़ गया और एक क्षण में ही वह सुन्दर माला उसके हस्तगत हो गई । राजा बड़ा आनन्दित हुआ ।

संसार छाया पर मुग्ध हो रहा है और गोते पर गोते खा रहा है । असली सौन्दर्य तो परम सुन्दर देव के परमोच्च परम धाम में निहित है । जो ऊपर चढ़ेगा, वह ही उसे प्राप्त करके परमानन्द को प्राप्त करेगा । योगाभ्यास के सोपन पर चढ़ते हुआ उस परम सुन्दर के सुन्दर धाम में पहुँचकर जो उसके परम सौन्दर्य का दर्शन कर लेता है, वह गाने लगता है : जैसे विद्यानंद विदेह लिखते हैं–

जब से दर्शन पाया तेरा ।
नहीं रीझता और किसी के यौवन पर मन मेरा ।
तू मुझमें है और तुझमें हूँ मैं तेरा तू मेरा ।
दिन उजियाला रात उजाली उजला शाम सवेरा ।
कहीं 'विदेह' न जाना आना, बन्द हुआ भवफेरा । ।

वह आदित्यवर्ण है । आदित्य का अर्थ है अखण्ड और वर्ण का अर्थ है रंग, रूप, सौन्दर्य । उसका दिव्य सौन्दर्य अखण्ड है । अखण्ड दिव्य तेज और अखण्ड दिव्य प्रकाश से युक्त उसके सौन्दर्य का वर्ण कैसा है ? उसके सौन्दर्य का वर्ण है दिव्य, इतना शुद्ध, इतना शुक्र, इतना श्वेत, इतना देदीप्यमान, इतना प्रखर, इतना चमकीला, इतना आकर्षक, इतना प्रिय, इतना मनोहर कि उसकी एक झलकमात्र से दर्शनकर्ता सदा के लिए आत्मना उसका हो जाता है, उसी में स्थित हो जाता है, उसी में परम आनन्द पाता है । उसी में सुख-शान्ति पाता है । वह दिव्य ज्योति है । वह दिव्य प्रकाश है । वह दिव्य सौन्दर्य है । वह अखण्ड अजस्र सर्वव्यापक सर्वरम दिव्य सौन्दर्य है । वह है ज्योतियों की ज्योति, प्रकाशों का प्रकाश, सौन्दर्यों का सौन्दर्य ।

15. आत्मा का स्वरूप

आत्मा अनिल, अन्-इल, अपार्थिव औरअमृत-अमर है । आत्मा स्वरूप से न जन्मता है, न मरता है । प्रकृति के मिष (कपट) से वह नाना रूपों, देहों, योनियों का धारण और करता है, ठीक वैसे ही जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को उतारकर नवीन वस्त्रों को पहनता है । देहरूपी धारणा और धारण में आत्मा के रूप में कोई अन्तर नहीं आता है । मरणशील देहों में आत्मा अमर ज्योति है । देहों के धारणा और बारण से आत्म-ज्योति की ज्योत्स्ना में कोई अन्तर नहीं आता है । देहों से उसकी ज्योति आवृत हो जाती है, ठीक वैसे ही जैसे आवरण से दीप का प्रकाश आवृत हो जाता है, जैसे बादलों से सूर्य का प्रकाश आवृत्त (छिप) हो जाता है, जैसे काली घटाओं से चन्द्र की चन्द्रिका आवृत हो जाती है ।

आवरण के हटने पर जैसे दीप का प्रकाश अनावृत होता है, बादलों के छिन्न भिन्न होने पर जैसे सूर्य का प्रकाश प्रकाशता है, वैसे ही आत्म-अवस्थिति के सिद्ध होने पर सदेह रहते हुए भी आत्मा अपने ज्योतिर्मय स्वरूप में स्थित होकर अपनी ज्योति का दर्शन करता है और देहमुक्त होकर परम प्रकाश में प्रकाशता है ।

स्वरूप से आत्मा शुद्ध और बुद्ध है । माया के सान्निध्य से उसमें जो अशुद्धता ओर अबुद्धता और अबुद्धता सी झलकती है, वह अध्याहार-मात्र हैं ज्यों ही वह माया से पृथक् होकर ऊपर उठता है, अपन शुद्ध बुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है । स्वरूप से आत्मा दिव्य है, प्रकाशमान है और स्वदेह में आत्मरश्मियों द्वारा वैसे ही प्रकाशता है जैसे अपनी रश्मियों द्वारा सूर्य आकाश में प्रकाशता है । छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी योनि में आत्मा अपनी चेतना और अपने प्रकाश द्वारा व्यापता है । आत्मास्वरूप से सुन्दर है, परम सुन्दर है, मनोहर है, परम मनोहर है । जब यह निज सौन्दर्य का अवलोकन कर लेता है, तो फिर यह प्रकृतिजन्य किसी भी पदार्थ पर आसक्त नहीं होता है, अपितु अपने आत्म-सखा ब्रह्म से प्रीतिमान होकर उसी से सुयुक्त रहता है ।

आत्मा होता है, होमनिष्पादक है, जीवन-यज्ञ का सम्पादक है । जब यह आत्मा अपने यज्ञीय स्वरूप से युक्त होकर जीवनयज्ञ का संचालन करता है

तो इस जीवन में यज्ञीयता आ जाती है और यह जीवन आत्म-सुरभि (सुगंध) से महकने लगता है । आत्मा ऋतु है; आत्मा कर्ता है । शरीर करण है । आत्मा कर्म-क्षमता से युक्त है । इसे कर्म करने की स्वतन्त्रता है; पूर्ण स्वतन्त्रता है । यह आत्मा क्रतु है, कर्तृत्व से युक्त है । आत्मा इन्द्र है; इन्द्रियों का स्वामी है । इन्द्रियों का स्वामी होने से ही आत्मा को इन्द्र कहते हैं । आत्मा परम अणु है, अतिसूक्ष्म है, नितान्त सूक्ष्म हैं इसी से यह छोटी से छोठी और बड़ी से बड़ी योनि में सयोनि हो जाता है और स्वधा से ऊपर नीचे इधर उधर सर्वत्र गति करता है । आत्मा सनातन है । यह सदा से है और सदा रहेगा । आत्मा सत्य है । इसके निज स्वरूप में कभी कोई परिवर्तन अथवा परिणाम नहीं होता है । यह अपरिवर्तनशील और अपरिणामी है । आत्मा जन्मना जातवेदाग्नि है, पावक और ज्ञानस्वरूप है, शोधक और उद्‌बोधक है । आत्मा इन्दु है, दिव्यता के परम दिव्य सागर का एक परम दिव्य बिन्दु है जिसके द्योतित होने पर दिव्यता का अथाह सागर उमड़ पड़ता है ।

16. प्रकृति का स्वरूप

प्रकृति परमाणुरूपा है। परमाणु प्रकृति के उस सूक्ष्मतम कणांश का नाम हे जिसका विभाग न किया जा सके। परमाणु का वर्ण शुक्र है। शुक्र का अर्थ है सर्वातिशय श्वेत, अत्यन्त सफ़ेद। जितने अधिक से अधिक श्वेत वर्ण हम संसार में देखते हैं उनसे भी कहीं अधिक श्वेत, बहुत अधिक श्वेत, नितान्त श्वेत वर्ण परमाणु का है। सृष्टि की विविध अवस्थाओं में घनत्व के कारण परमाणुओं से बने हुए विविध पदार्थ नाना वर्ण धारण कर लेते हैं। निज रूप में परमाणु शुक्र है।

अखिल परमाणु तथा परमाणुओं से निर्मित अखिल सृष्टि जिसमें स्थित रहती है वह आकाश है। अखिल परमाणुओं तथा अखिल सृष्टि सहित यह अनन्त असीम आकाश जिसमें स्थित है वह है खं ब्रह्म, पर आकाश, परम आकाश, आकाश ब्रह्म, ब्रह्म आकाश, परम प्रकाश, पर ब्रह्म, ब्रह्म जिसके स्वरूप का कुछ वर्णन पूर्व किया जा चुका है। उस खं ब्रह्म, एक सत् को ज्ञानी जन अनेक नामों से पुकारते हैं।

परमाणु और पारमाणविक यह सब उस खं ब्रह्म में अन्तर्निहित है। सागर के गर्भ में अन्तर्निहित जल में जैसे असंख्य अनुदात उदात्त तरंगेंउठतीं और उसी में विलीन होती रहती हैं, वैसे ही खं ब्रह्म में अन्तर्निहित आकाशीय परमाणुओं के अक्षय सलिल से असंख्य सृष्टियाँ तरगंवत् मिषत : ही संसृष्ट (सम्बद्ध) और उसी में मिषतः विलीन होती रहती है। एक साथ ही असंख्य और मण्डल बनते रहते हैं और असंख्य सौर मण्डल विलीन होते रहते हैं। परमाणु अपने नितान्त रूप में तत्त्वतः एक ही तत्त्व है, यद्यपि प्रकृति की रचना, स्थिति और प्रलयन में घनत्व के परिमाण से वे पंच तत्त्व का रूप धारण कर लेते हैं। प्रकृति के अन्तर्गत अग्रलिखित 8 तत्त्व आते हैं–

(1) आकाश, (2) पृथ्वी, (3) जल, (4) वायु, (5) अग्नि, (6) मन, (7) बुद्धि, (8) अहंकार।

17. ज्ञान समाधि (निर्मलता)

परमात्मा सर्वव्यापक है। आत्मा आत्मा में और कण कण में उसकी सर्वव्यापिनी सत्ता समा रही है। परमात्मा सर्वज्ञ है। सर्वव्यापक ही नहीं, वह सर्वज्ञ भी है। जहाँ जो कुछ है और हो रहा है वह सब उसके ज्ञान में है। एकान्त से एकान्त में भी जब कोई कुछ करता एवं बोलता है वह उस सबको स्वतः ही जान लेता है। करना और बोलना तो दूर, वह तो विचार और भावना तक को जानता होता है। कोई कहीं भी क्यों न हो वह सदा सर्वत्र परमात्मा की उपस्थिति में उपस्थित है, वह हमेशा परमात्मा के हुज़ूर में हाज़िर है।

ब्रह्म की सर्वव्याप्ति और सर्वज्ञता में अटूट अखण्ड विश्वास स्थापन करने के अभ्यास का नाम ही ज्ञान समाधि है। साधक के ज्ञान में सदा यह ज्ञान रहता हे कि ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। साधक की निष्ठा में इस तथ्य की अविचल धारणा होना कि वह ब्रह्म में हैं और ब्रह्म उसमें है, ज्ञानसमाधि है। ज्ञानसमाधि के अभ्यास की परिपक्वता के लिए अग्रलिखित पद का गान किया कीजिए –

ब्रह्म मुझमें है, मैं ब्रह्म में हूँ।

ज्यों ज्यों आपकी ज्ञानसमाधि का अभ्यास पकता जाएगा, त्यों त्यों आप निष्पाप, निर्भय और निश्चल होते चले जाएंगे। ज्ञानसमाधि के सिद्ध होने पर आप पूर्ण ज्ञान बनकर सर्वथा अनासक्त, निर्लेप, निस्पृह, निर्विकार, वासनारहित और निर्मल हो जाएंगे। जिसने यह जान लिया है और जिसने यह मान लिया है कि ब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है, वह न पापयुक्त विचार कर सकता है, न पापमय भावना रख सकता है, न पाप कर्म कर सकता है। जिसने यह अनुभव कर लिया है कि वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्त सत्ता सदा उसके अंग संग है, वह नितान्त निर्भय, निश्शंक और निर्द्वन्द्व हो जाता है।

जिसने ज्ञाननेत्र से यह देख लिया हे कि अविचल ब्रह्म सदा उसके साथ है उसे संसार के हानि लाभ, वैर विरोध, प्रलोभन आकर्षण, उत्थान पतन, जीवन मरण, मान अपमान, विषय विलास, जय पराजय, पद-प्रतिष्ठा, धन ऐश्वर्य, राज्य साम्राज्य, रूप, लावण्य, यौवन, सौन्दर्य, दुःख-सुख, सम्पत्ति-

विपत्ति, कदापि एक क्षण के लिए भी विचलित वा प्रभावित नहीं कर सकते। वह ध्रुव ध्रुवता से युक्त हो जाता है। ज्ञानसमाधि के सतत अभ्यास से निष्पाप, निर्भय और निश्चल हो जाने पर आप अनासक्त हो जाएंगे। ममता, ममत्व, मेरापन ही आसक्ति का कारण है। ज्ञान-समाधि के साधक ने जब यह जान लिया कि यह जगत् और इस जगत् में जो कुछ है वह सब उस जगत्पति का है, तब किसी भी पदार्थ या प्राणी में ममत्व कैसा और आसक्ति कहाँ।

जब यह संसार और इस संसार का सब कुछ उस प्रभु का ही है, तब लेप कहाँ। यह संसार जिसका कार्यस्थल है, इस कार्यस्थल में जो भी कार्य है वह सब उसी का है। इस संसार में साधक के लिए अपना कोई कार्य ही नहीं है, साधक जो भी कार्य कर रहा है वह उसका अपना कार्य नहीं है, उस प्रभु का है। कर्म में ममता के अभाव से साधक निर्लेप हो जाता है। जब यह विश्व और इस विश्व का सर्वस्व उस प्रजापति का है तब इस विश्व के समस्त प्राणी और सब मानव उस प्रजापति की ही प्रजा है। परिवार परिजन उसी प्रजापति की प्रजा है। इस तथ्य को हृदयंगम कर लेने पर साधक नितान्त निःस्पृह हो जाता है। आसक्ति, लेप और स्पृहा (इच्छा) ही समस्त विकारों का कारण है। इन तीनों से रहित होने पर वासनाओं का स्वयमेव नाश हो जाता है। वासनाओं के नाश से सब भोग और रोग समाप्त हो जाते हैं। जहाँ न भोग, वहाँ न रोग। इन सब मल-विक्षेपों से मुक्त होकर ज्ञानसमाधि का साधक नितान्त निर्मल हो जाता है। पूर्णतः निर्मल हो जाता है।

18. भाव समाधि (ब्रह्ममयता)

अखिल सृष्टि ब्रह्ममय है। सृष्टि ब्रह्म में है; ब्रह्म सृष्टि में हैं ब्रह्म व्यापक है। सृष्टि व्याप्य है। सृष्टि ब्रह्म में निहित है। ब्रह्म सृष्टि में अन्दर बाहर सर्वत्र व्याप रहा है। यह अनन्त और असीम सृष्टि अमा (अमावस्था) है, अमापनीय है। अनन्त काल से मानव सृष्टि को माप कर उसकी थाह पाने में लगा हुआ है। किन्तु वह इसे न माप सका है, न कभी माप सकेगा। अनन्त और असीम होने पर भी वह सृष्टि ब्रह्म की अपेक्षा से सान्त और समीम है। प्रकृति के परमाणु और परमाणुओं से बनी हुई यह अखिल सृष्टि सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म से ओत-प्रोत है। अतः एव सृष्टि का एक-एक कण सच्चिदानन्द की सच्चिदानन्दता से युक्त है। प्रकृति सत् है। आत्मा सत् और चित् है। परमात्मा सत्, चित् और आनन्द है। सत् और सच्चित् में सबमें, सच्चिदानन्द समा रहा है। यह सब सच्चिदानन्दमय है। जिस प्रकार कोयलों में अग्नि की व्याप्ति से कोयले अग्निरूप होते हैं, वैसे ही सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म की व्याप्ति से यह अखिल ब्रह्माण्ड सच्चिदानन्दरूप है। जिस प्रकार आत्मा की चेतना से सारा शरीर आत्म-चेतना से चेतनामय रहता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द ब्रह्म की व्याप्ति से यह अखिल सृष्टि ब्रह्म की सच्चेतना तथा उसके आनन्द से पूर्ण है। जब आत्मा शरीर को छोड़कर चला जाता है तो शरीर आत्मा की आत्मचेतना से शून्य हो जाता है। सच्चिदानन्द ब्रह्म का कभी हीं से बहिर्गमन नहीं होता है। यह सब सदा ही तन्मय रहता है। ''रूप-रंग प्रतिरूपो बभूव'', वह रूप-रूप में प्रतिरूप हो रहा है—ऋग्वेद की इस सूक्ति में यही भाव सन्निहित है। वह रूप रूप में प्रतिरूपित है। रूप रूप में उसी रूप राशि का रूप रूपित है। हर सौन्दर्य में उसी के सौन्दर्य की छायाछवि छिटक रही है। हर वस्तु में उसे देखना, हर दृश्य में उसकी दर्शनीयता का दर्शन करना, प्रत्येक सौन्दर्य में उसके सौन्दर्य का अवलोकन करना, प्राणिमात्र में उसे अनुप्राणित अनुभव करना, यह भावसमाधि है। जैसे—

क्या बताऊँ कि मुझे क्या-क्या नज़र आता है।
ज़र्रे ज़र्रे में तेरा जलबा नज़र आता है।
खिलीं जो कलियाँ नज़र आया तेरा मुस्काना।

गुलों में मुझको तेरा हँसना नज़र आता है ।
उषा की सुरखी में सुरखी तेरे रुख़सारों की ।
हर एक अदा में तू इठलाता नज़र आता है ।

ब्रह्ममयता की इस अनुभूति से साधक की दृष्टि में ब्रह्मदृष्टि की स्थापना होती है । विचार कीजिए । जब कण-कण में ब्रह्म की सत्त सन्निहित है, तब कोई भी पदार्थ ब्रह्ममयता से शून्य कैसे हो सकता है । जब सबमें सर्वत्र चेतन ब्रह्म व्याप रहा है, तब कोई वस्तु चेतनारहित कैसे हो सकती है । जब सबमें आनन्दस्वरूप समा रहा है, तब कोई भी और कुछ भी आनन्दविहिन कैसे हो सकता है ।

सच्चिदानन्द की चेतना और उसका आनन्द सर्वत्र आपूर (व्याप्त) है । अपनी दृष्टि में ब्रह्ममयता लाइए । अपनी भावना में ब्रह्म की व्याप्ति को बसाइए । अपनी अनुभूति में उसकी आनन्दमयी सत्ता और उसकी चिन्मयी चेतना की अनुभूति जगाइए । ऐसा करने से आपकी दृष्टि में दिव्यता का प्रस्फुटन होगा और हर वस्तु में आपको ब्रह्म की ज्योति जगमगाती नज़र आएगी । इस अभ्यास से आप की आत्मचेतना में दिव्यता का संचार होगा और सब में सर्वत्र आपको ब्रह्म की दिव्य चेतना का आभास होगा । इस अनुभूति से आप को सबसे सर्वत्र ब्रह्मानन्द का दिव्य आस्वादन (स्वाद) होगा ।

19. ध्यानसमाधि

ध्यानसमाधि का अभ्यास आरम्भ करते हुए आप अपने लिए प्रथम अपनी शरीर-रचना के अनुकूल एक आसन निश्चित कीजिए। यह स्मरण रखिए कि ध्यान-समाधि की सिद्धि के लिए आसन का आदि से अन्त तक समान महत्त्व है। जब तक आप का आसन निश्चल, स्थिर और सुखद न होगा, तब तक अन्य समस्त क्रियाओं को करते हुए भी आप ध्यान समाधि की साधना में स्थायी और सफल प्रगति न कर सकेंगे। पद्मासन सर्वश्रेष्ठ आसन है। इस आसन में स्थित होकर ध्यान करने से बहुत शीघ्र ध्यान जमने लगेगा। दूसरा आसन है सिद्धासन और तीसरा सर्वसरल आसन है सुखासन। उत्तम यही हे कि आप या तो पद्मासन में स्थित होने का अभ्यास करें अथवा सुखासन में। इस आसनों के अतिरिक्त भी अपने पैरों और अपनी जंघाओं के जोड़ मोड़ के अनुसार आप अपने लिए किसी अन्य प्रकार के नवीन आसन का आविष्कार भी कर सकते हैं।

आसन में स्थित होकर अपने धड़ और सिर का सीधी सतह में स्थित कीजिए। आप की पीठ और आपके शिर का पिछला भाग एक सीध में टिकने चाहिएं। आप का हनू (ठोडी) का निचला भाग आपकी ग्रीवा (गर्दन) के मूल के गढ़े सामने ठहर जाए। अपने हाथों की दोनों हथेलियां को या तो अपने पैरों के घुटनों पर चिपका कर जमा लीजिए या हथेली पर हथेली रखकर अथवा दोनों हाथों के पंजों को परस्पर अंगुलियों से गूंथकर अपनी नाभि के नीचे जमा दीजिए। दोनों ओष्ठों को जोड़कर मुख बन्द कीजिए। पलकों को ढांपकर दोनों नेत्र बंद कर लीजिए।

इस प्रकार एक समय में एक साथ 5 मिनट से आरम्भ करके 30 मिनट तक निश्चल होकर स्थिरता के साथ सुखपूर्वक आसन में बैठने का अभ्यास कीजिए। योगसमाधि के लिए 30 मिनट का निश्चल आसन सुपर्याप्त हैं इससे अधिक बैठना समय का अपव्यय तो है ही, कालान्तर में स्वास्थ्य के लिए भी हानिप्रद सिद्ध होता है। प्रातः और सायं दोनों समय 30-30 मिनट

ध्यानावस्थित होने का अभ्यास करना अति श्रेष्ठ है। समय का अभाव हो तो प्रातः 30 मिनट और सायं 15 मिनट। ध्यान समाधि के अभ्यास के लिए जब आप अपने निश्चित आसन में स्थित हो जाएं तो नेत्र बन्द करके प्रथम 3 बार कोमल और मध्यम स्वर में ओ३म् का दीर्घ नाद कीजिए। तत्पश्चात् अधोलिखित सूक्ति बोलिए :

तेजो यत् ते रूपं कल्याणतमं तत् ते पश्यामि।

परम सुन्दर देव ! तेरा जो परम तेजोमय, परम कल्याणकारी, परम मनोहर, परम सुन्दर, प्रकाशमय स्वरूप है, मैं उसका दर्शन करता हूँ।

ध्यान समाधि के अभ्यास की समाप्ति पर पुनः तीन बार उसी प्रकार ओ३म् का दीर्घ नाद कीजिए और तत्पश्चात् अग्रलिखित वाक्य बोलकर अभ्यास समाप्त कीजिए–

तेजो यत् ते रूपं कल्याणतमं तत् ते पश्यामि।

परम सुन्दर देव! तेरा जो पर तेजोमय, परम कल्याणकारी, परम मनोहर, परम सुन्दर, प्रकाशमय स्वरूप है, मैं उसका अन्दर बाहर सबमें सर्वत्र, साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।

20. वृत्ति : निरोध

नेत्र, श्रोत्र, वाणी और सांस (श्वास-प्रश्वास) के द्वारा वृत्तियों का बाहर की ओर प्रगमन होता है। वृत्तियों के निरोध के लिए इन चारों का कठोर नियंत्रण अथवा पूर्ण संयम करना अतिशय आवश्यक है। जब किसी व्यक्ति को नींद नहीं आती है, तो वह आँख-मुँह बन्द करके और कान दबाकर लेट जाता है और निद्रा लाने का यत्न करता है। नेत्र, श्रोत्र अैर मुख के इस संयम से प्रथम उसे धीरे-धीरे झपकी सी आती है, फिर झपकी निद्रा में परिवर्तित होती है और तब व्यक्ति सुषुप्ति आच्छादित हो जाता है। सुषुप्ति की अवस्था मे पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के सांस की गति स्वयमेव निरुद्ध हो जाती है।

वृत्तियों के निरोध की सिद्धि के लिए साधक को अपने नेत्र, श्रोत्र और वाणी का पूर्ण संयम करना चाहिए। नेत्र, श्रोत्र और वाणी के संयम से सांस का निरोध स्वयमेव सिद्ध हो जाता है। नेत्रों के निरोध के लिए अपनी दृष्टि का संयम कीजिए। यदि आप पढ़ रहे हैं तो अपनी दृष्टि को पढ़ने में ऐसा केन्द्रित कीजिए कि पढ़ते समय आपकी दृष्टि बिल्कुल इधर-उधर न जाए। यदि आप चित्र बना रहे हैं तो आप की दृष्टि चित्रकारी में केन्द्रित हो जाए। आज जो भी कार्य कर रहे हैं, उसी कार्य में आपकी दृष्टि लगाइये। मार्ग चलते हुए आप मार्ग बिलाकिनी दृष्टि रखें। इधर-उधर अकारण किसी की ओर दृष्टिपात न करें। केन्द्रित दृष्टि, निची निगाह वा बन्द पलक इन तीन अभ्यासों से नेत्रों का पूर्ण निरोध सम्पादन कीजिए। ग्रंथपाठ और साहित्यावलोकन का सम्बन्ध भी नेत्रों से है। नेत्र-निरोध के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि आप अतिशय विशुद्ध और सात्त्विक ग्रन्थों व प्रकाशनों का ही अवलोकन करें।

श्रोत्रों के संयम के लिए अनावश्यक व्यर्थ वार्तालाप से सदा बचिए, अश्लील, असंगत और अप्रासंगिक बातें न सुनिए, शृंगारिक व रसिक गाने-बजाने अपने कर्णगोचर न होने दीजिए। अपावन वचन अपने कानों में न आने दीजिए। कम-से-कम और नितान्त आवश्यक वचनों को ही अपने

श्रोत्रों से टकराने दीजिए। श्रुति के इस प्रकार सुसंयम से श्रोत्रों का संयम सिद्ध कीजिए।

वाणी के संयम के लिए सदा मुनि-भाव को प्राप्त रहिए। यदि एक शब्द बोलने से काम चल सकता है तो दो शब्द न बोलिए। सदा ओष्ठ बन्द रखिए। कभी ओष्ठ निरर्थक न खोलिए। सर्वदा नाप-तोल कर नपे-तुले शब्द बोलिए। जब आप आसनस्थ होकर ध्यान करने बैठेंगे, तब उपर्युक्त वृत्ति-निरोध का सन्तत अभ्यास आपके ध्यान को जमाने में ओर ध्यान को जमाकर समाधि में प्रवेश कराने में अत्यन्त सहायक होगा।

आसनस्थ होकर नेत्र और ओष्ठ बंद करके इच्छाशक्ति के द्वारा श्रवणशक्ति को अन्तर्मुख कीजिए। निश्चलता के साथ आसन पर आसीन होने से प्राण स्वयमेव स्थित और निश्चल होता चला जाएगा। यों आसन पर स्थिर होकर सविता देव के वरेण्य भर्ग का, सौन्दर्य के परम सूर्य परम पावन प्रभु के दिव्य सौन्दर्य का, प्रकाशस्वरूप देव के दिव्य प्रकाश का, ध्यान कीजिए। नेत्र बन्द करने पर बन्द आँखें से जैसा भी धूमल वा धवल वर्ण दिखाई पड़े, उसी पर अपना ध्यान जमाइए। उसी धूमल वा धवल वर्ण को देव सविता का वरेण्य भर्ग, प्रकाशस्वरूप देव का दिव्य प्रकाश, सुन्दर देव का दिव्य सौन्दर्य समझकर, उसी पर अपना सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित कर दीजिए। ध्यान करते-करते आपकी धारणाओं में दिव्यता का संचार होता जाएगा। अभ्यास के परिपक्व होने पर आपकी दृष्टि से आप को देव सवित के परब्रह्म के परम सुन्दर परम प्रकाशमय, दिव्य स्वरूप का दर्शन होगा, सन्दर्शन होगा। किसी चक्र वा किसी स्थान विशेष पर कभी भूलकर भी ध्यान जमाने का अभ्यास न कीजिए, अन्यथा जिस स्थान पर आप अपना ध्यान जमाएंगे, उसी स्थान पर पीड़ा हो जाएगी।

21. संकल्प का शमन : विचार का स्तम्भन (बाह्य)

देव सविता के वरेण्य भर्ग का ध्यान करते हुए संकल्पविकल्प के शमन और मस्तिष्क के विचारों के स्तम्भन (स्तुति) का अभ्यास कीजिए। मन के संकल्प-विकल्प और मस्तिष्क के चिन्तनात्मक विचार ध्यान में बाधक होते हैं। प्रायः अभ्यासी जन कहा करते हैं, जब हम नेत्र बन्द करक ध्यान करने बैठते हैं, तो हमारे मन में अनेक संकल्प-विकल्प उठने लगते हैं और न जाने कहाँ-कहाँ के क्या-क्या विचार उत्पन्न होते हैं। हमारा मन और हमारा चिन्तन न जाने कहाँ-कहाँ की बाधाएं करने लगता है। ध्यान के मार्ग में निस्सन्देह ये दो बहुत बड़ी बाधाएं हैं। या यों कहिए कि ध्यान के मार्ग में केवल ये दो ही मुख्य बाधाएं हैं। इन दो बाधाओं का समापन हो जाने पर ध्यान का मार्ग सर्वथा प्रशस्त हो जाता है।

कल्प का अर्थ हे रचना करना, निर्माण करना, बनाना। कल्प से ही कायाकल्प बना है। जिसका अर्थ है काया का नव निर्माण करना। कल्प से पूर्व संम् और वि जोड़ने से संकल्प और विकल्प शब्द बने हैं। कल्प से कल्पना शब्द बना है। कल्पना में सम् सतत सम्यक् कल्प करना संकल्प है। कल्पना में विविध कल्प करना संकल्प-विकल्प है। विविध प्रकार की कल्पनाओं के महल खड़े करना संकल्प-विकल्प है। संकल्प-विकल्प से विचारों का उद्भव होता है जिस विषय में एवं जिस विषय का मन संकल्प-विकल्प करता है मस्तिष्क उसी विषय में और उसी विषय का चिन्तन करता है। चिन्तन विचारों का स्रोत है। चिन्तन के से मस्तिष्क में से विचारों के स्रोत फूट पड़ते हैं। चिन्तन से विचारों की असंख्य धाराएं, असंख्य लहरें, असंख्य तरंगें प्रवाहित होने लगती हैं।

मन में एक संकल्प उठता है। उसी एक संकल्प से अनेक विकल्प उठते हैं। प्रत्येक संकल्प अनेक विकल्पों को जन्म देता है। एक संकल्प की पूर्ति के लिए अनेक विकल्प उद्बुद्ध होते हैं। प्रत्येक विकल्प मस्तिष्क में जाकर टकराता है और मस्तिष्क चिन्तन द्वारा उस विकल्प का विश्लेषण

करना आरम्भ कर देता है। मस्तिष्क के विश्लेषण से तद्विषयक समस्त स्मृति-कण में तद्विषयक संचित स्मृतियों चिन्तनों और विचारों को गति देती है। विचारों का एक प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है। एक समुद्रमन्थन सा होने लगता है। प्रत्येक संज्ञान-कोश तद्विषयक असंख्य नवीन चिन्तनों और विचारों को विश्लेषण सागर में उंडेल देता है। विचार सिन्धु में महान् संघर्ष होता है।

संकल्प-विकल्प, चिन्तन और मनन का यह क्रम निर्व्यवधान चलता रहता है और इतनी तेजी के साथ चलता रहता है कि समय के छोटे से छोटे विभाग की कल्पना करके भी उसकी गति का निर्धारण नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार विद्युत्-वेग से प्रेरित होकर प्रकार की रेखाएं प्रति सैकण्ड 1,36,000 मील की गति से निरन्तर दौड़ती रहती हैं, उसी प्रकार मनःसंकल्प से प्रेरित और विकल्पों से प्रेरित होकर विचार की रेखाएँ प्रति सैकण्ड 68,000 मील तक की गति से दौड़ती हैं।

संकल्प जितना दृढ़ होता है, विकल्प उतने ही वेगवान् होते हैं। विकल्प जितने वेगवान् होते हैं, विचार उतने ही तीव्रगामी होते हैं। संकल्प से उत्तेजित होकर विकल्प मस्तिष्क की ओर उद्गमन करते हैं। विकल्पों से उत्तेजित होकर मस्तिष्क चिन्तनों को उत्तेजित करता है। चिन्तनों से उत्तेजित होकर विचारों में गति होती है।

सब विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का मूल संकल्प है। संकल्प का शमन (शान्ति) होने पर विकल्पों का शमन हो जाता हैं विकल्पों का शमन होने पर चिन्तनों का शमन हो जाता हैं चिन्तनों का शमन होने पर विचारों का शमन हो जाता है। साधक को अपने विकल्पों, चिन्तनों और विचारों से संघर्ष नहीं करना है। अपने संकल्पों का शमन करना है। मूल स्रोत का शमन होने पर स्रोत से प्रवाहित होने वाली धाराओं का स्तम्भन स्वयंमेव हो जाता है। संकल्प मन का स्वाभाविक धर्म है। मन से संकल्प का निर्मूलन कदापि नहीं किया जा सकता। उसका केवल शमन किया जा सकता है। मन और मन के संकल्प जागृति और स्वप्न की अवस्थाओं में निरन्तर कार्य करते रहते हैं।

अतः एव इन दोनों अवस्थाओं में विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का निरन्तर तांता लगा रहता है ।

सुषुप्ति को अवस्था में मन सुषुप्त हो जाता है । सुषुप्ति में जब तक मन सुषुप्त रहता है, तब तक मन के संकल्प भी सुषुप्त रहते हैं । सुषुप्ति में मन के सुषुप्त रहने के कारण मन के संकल्प सुषुप्त रहते हैं । मन की इस अवस्था का नाम संकल्प-सुषुप्ति है । सुषुप्ति के कारण जो संकल्प-शमन होता है, उस अवस्था में आत्मा चिन्मय कोश में आत्मधृत आत्मरत रहता है । मन के संकल्पों से उत्पन्न होने वाले विकल्पों, चिन्तनों और विचारों का अनायास ही पूर्ण स्तम्भन हो जाता है । इन्द्रियाँ सर्वथा निष्चेष्ट हो जाती हैं ।

सुषुप्ति एक प्रकार की समाधि है । इसीलिए योगियों की भाषा में सुषुप्ति का नाम जड़ समाधि है । जब योगी आसनस्थ होकर मनोनिग्रह करके अपनी आत्मधारणा से अपने ध्यान को स्थिर, समाहित करता है, तो उसकी उस स्थिरता अथवा समाहिति का नाम योगसमाधि है । सुषुप्ति जड़ समाधि है । योग समाधि चेतन समाधि हैं सोने वाला जब निद्रा में लीन होता हुआ स्वप्नावस्था को पार करके सुषुप्ति में सुषुप्त होता है, तो मन और मन के संकल्प सुषुप्त हो जाते हैं । उसी प्रकार जब आसनस्थ योगी आत्मधारणा के द्वारा शरीरेन्द्रियों को निश्चेष्ट करके अपनी वृत्तियों को ध्यानवृत्त पर टिका कर अपने ध्यान को स्थिर करता है, तो मन और मन के संकल्पों का उसी प्रकार शमन हो जाता है, जिस प्रकार सुषुप्ति में होता है ।

संकल्प-सुषुति और संकल्प-शमन में केवल एक अन्तर हैं संकल्प-सुषुप्ति में मन का आत्म-चेतन से सम्बन्ध कटा रहता है। संकल्प-शमन में मन आत्म-चेतना से आविष्ट रहता है । ध्यानावस्था में संकल्प-शमन की सिद्धि होने पर ध्यानावस्था में विकल्प सर्वथा निरुद्ध रहते हैं । विकल्पों के निरुद्ध रहते हुए चिन्तनों में उत्तेजना नहीं होती है । चिन्तनों के अनुत्तेजित रहने से विचार उद्‌बुद्ध नहीं होते हैं । यही विचारों का स्तम्भन है । संकल्प की आवश्यकता केवल बाह्य चेष्टाओं के लिए है । बहिर्मुख होकर

बाह्य कर्म करने के लिए ही संकल्प का उपयोग है । वृत्ति के बाह्य होने पर ही संकल्प उत्तेजित होकर विकल्पों, चिन्तनों और विचारों की सृष्टियां रचता है । वृत्ति के अन्तःस्थ होने पर संकल्प का शमन होता है । संकल्प अनुद्बुद्ध रहता हैं बाह्य के लिए ही संकल्प की आवश्यकता है, अन्तः के लिए नहीं ।

जागृति और स्वप्न—इन दो अवस्थाओं में संकल्प सक्रिय रहता हैं सुषुप्ति-अवस्था में संकल्प मनःसहित सुषुप्त हो जाता है । सुषुप्ति-अवस्था में चित्त, मन, बुद्धि तथा ज्ञान-कर्म-इन्द्रियों सहित सारा शरीर सुषुप्त हो जाता है । परिणामस्वरूप संकल्प, विकल्प, मनन, चिन्तन और गति सब सुषुप्त और निष्चेष्ट हो जाते हैं । जब सुषुप्ति समाप्त होती है, तो प्रथम चित्त, मन, बुद्धि सचेत होते हैं और उनके सचेत होते ही मन में संकल्प उठने आरम्भ हो जाते हैं । संकल्पों के उद्बुद्ध होते ही सारी इन्द्रियाँ सचेत और जागृत होकर विविध प्रकार की गति और चेष्टा करने लगती है ।

संकल्प-शमन का अभ्यास प्रारम्भ करने से पूर्व साधकों को जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति —इन तीनों अवस्थाओं का साक्षात्कार कर लेना चाहिए । इन तीनों अवस्थाओं का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के लिए इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना होगा । यह समझ लेना चाहिए कि इच्छा-शक्ति आत्मा की उस निष्क्रामक शक्ति का नाम है, जिसके द्वारा वह अपनी सूक्ष्म स्थूल अथवा अन्तः बाह्य इन्द्रियों द्वारा विश्व के मनोमय जगत् में कार्य करती है ।

त्रि-अवस्थाओं का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने की सरल विधि यह है । आप जब भी सोएं, तब ही अपने बिस्तर पर चित्ती एवं दायीं करवट से, नेत्र बन्द करके लेट जाएं । फिर अपनी इच्छाशक्ति द्वारा स्वप्न-क्षेत्र को पार करके सुषुप्ति में प्रवेश करने का उपक्रम करें । ऐसा करते हुए आप अपनी इच्छाशक्ति और चित्त की वृत्ति को पूर्णतया यह अनुभव करने में लगाएं कि आपकी जागृतावस्था किस प्रकार स्वप्नावस्था में लीन होती है और स्वप्नावस्था किस प्रकार सुषुप्ति में विलीन होती है । इसका नित्य निरन्तर अभ्यास करते-करते कुछ काल में आपको प्रत्यक्ष यह अनुभव हो जाएगा कि जागृति क्या वस्तु है, जागृति और स्वप्न की सन्धि में क्या स्थिति होती है,

स्वप्न क्या वस्तु है, स्वप्न और सुषुप्ति की सन्धि में क्या स्थिति होती है और सुषुप्ति क्या वस्तु है तथा उसकी क्या स्थिति है ।

जब सुषुप्ति में प्रवेश करके उसमें स्थित रहने तक का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाए, तब यह साक्षात् करने का अभ्यास कीजिए कि सुषुप्ति से जागृति में किस प्रकार वापस आया जाता है । इसका अभ्यास बहुत सरल है । जब आप सोने लगे तो अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से यह निर्णय करके सोएं कि सुषुप्ति से जागृति की ओर लौटने पर मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होना चाहिए कि सुषुप्ति से लौटते हुए सुषुप्ति और स्वप्न की सन्धि पर कैसी स्थिति होती है और स्वप्न और जागृति की सन्धि पर कैसी । जागृति से सुषुप्ति और सुषुप्ति से जागृति, दोनों प्रकार के अभ्यासों में आप अपनी इच्छाशक्ति और चित्तवृत्ति को यह अनुभव करने पर केन्द्रित रखिए कि प्रत्येक अवस्था और स्थिति में संकल्प की क्या-क्या स्थिति रहती है और क्या-क्या रूप रहता है ।

22. आत्म-अवस्थिति

आत्म-अवस्थिति के लिए दो अभ्यास हैं—एक जागृति में और दूसरा आसनस्थ होकर समाधि में जाग्रति में प्रतिक्षण यह स्मरण रखिए कि आप स्वयं और आपका शरीर, दो पृथक्-पृथक् सत्ताएं हैं। आप आत्मा हैं, शरीर नहीं है। आत्मा शरीर का निवासी है, शरीर आत्मा का निवास-स्थान है। आत्मा अभौतिक, अजर, अमर, शुद्ध, पवित्र और दिव्य है। शरीर भौतिक और भस्मात है। आत्मा और शरीर को पृथक्-पृथक् प्रतीति के लिए आप जागृति में निम्न सूत्र का मन ही मन सदा अथवा इस सूत्र का सदा स्मरण रखेः

''अहमिन्द्रो न शरीरम्'' अर्थात् (अहं) मैं (इन्द्र) आत्मा हूँ, (न शरीरम्) शरीर नहीं हूँ।

इन्द्र का अर्थ है इन्द्रियों का स्वामी, आत्मा। इन्द्रियों का समुच्चय ही शरीर कहलाता है। शरीर इन्द्रियरूप है। इन्द्रियाँ के संघात का नाम ही शरीर है। मैं और मेरा में भेद है। मैं से मेरा और मेरा से मैं सर्वथा भिन्न है। मैं मैं हूँ। मेरा मेरा है। मैं यह आत्मा हूँ। मेरा यह शरीर है। मैं एक हूँ। मेरा अनेक हैं। अपनी अपेक्षा से, स्वात्मा की अपेक्षा से, मेरा केवल मैं हूँ। शरीर की आत्मा से ममत्व (मेरापन) का एक असंख्यसूची जाल फैला हुआ है। जब तक मैं शरीर मं हूँ, तभी तक माता मेरी, पिता मेरा, पत्नी मेरी, पति मेरा, पुत्री मेरी, पुत्र मेरा, परिवार मेरा, राज मेरा, पाट मेरा, धन मेरा, भूमि मेरी, न जाने क्या-क्या मेरा। न वह मेरी न वह मेरा।

जन्म और मरण मेरी अपेक्षा से नहीं है, शरीर की अपेक्षा से है। शरीर धारण का नाम जन्म है और शरीर त्याग का नाम मरण ह। मैं न जन्मता हूँ, न मरता हूँ। मैं तो अजन्मा और अमरणधर्मा हूँ। मेरा न जन्म है, न मरण। रोग और भोग भी मेरी अपेक्षा से नहीं। शरीर की अपेक्षा से हैं। रोग शरीर में व्यापते हैं, मुझमें नहीं। भोग शरीरेन्द्रियों के विषय हैं, मेरे नहीं। मैं स्वरूप से रागरहित और भोगरहित हूँ। हर्ष और शोक भी शरीर की अपेक्षा से हैं, मेरी अपेक्षा से नहीं। भोग से हर्ष और रोग से शोक की अनुभूति मुझे मन और

बुद्धि के निमित्त से होती है ।

मैं स्वयम्भू हूँ मैं स्वयंसत्त हूँ । मुझे कभी किसी ने उत्पन्न नहीं किया । मैं स्वयं जात हूँ । मैं सदा से हूँ और सदा रहूँगा । कोई समय न था जब मैं नहीं था । ऐसा समय न होगा, जब मैं न हूँगा । मेरा न भूत है, न भविष्यत् । मैं सदा वर्तमान हूँ । काल का व्यवहार मेरी अपेक्षा से नहीं, शरीर की अपेक्षा से है । मैं कालातीत हूँ । गुणों का प्रभाव मेरी अपेक्षा से नहीं, शरीर की अपेक्षा से है । सत् रज तम का सम्बन्ध शरीर से है, मुझमें नहीं । त्रिगुणात्मक यह शरीर है, जो त्रिगुणात्मक प्रकृति से बना है । मैं त्रिगुणातीत हूँ । विकार भी शरीर की अपेक्षा से है । मैं निर्विकार हूँ ।

जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाएं शरीर की अपेक्षा से है, मेरी अपेक्षा से नहीं । मैं त्रि-अवस्थातीत हूँ । हानि-लाभ, ममता परता, मेरा तेरा, सफलता विफलता, जय पराजय, पाप पुण्य, दुःख सुख का द्वन्द्व शरीर की अपेक्षा से है, आत्मा की अपेक्षा से नहीं । इस व्याख्या के प्रकाश में सदा स्मरण रखि और निरन्तर चिन्तन कीजिये—अहमिन्द्रो न शरीरम् । शरीर में रहते हुए अपने आत्मा को अपने शरीर से सर्वथा सर्वतः सर्वशः पृथक् समझिए ।

आत्म-अवस्थिति का यह अभ्यास ज्यों ज्यों पक्व होता जाएगा, त्यों त्यों आपका संकल्प शमन भी उसी मात्रा में पकता जाएगा । अभ्यास करते करते जब आपकी वह स्थिति होगी कि आप स्पष्टतया अपने आत्मा को अपने शरीर से सर्वथा भिन्न और पृथक् अनुभव करने लगेंगे । तब आप देखेंगे कि आपको संकल्प-शमन की सिद्धि प्राप्त हो गई है । इस सिद्धि के सिद्ध होने पर आप आसनस्थ होते ही निमेषमात्र में अपने संकल्प का शमन करके अपने अन्तः में सर्वथा आत्मस्थ अथवा आत्म-अवस्थिति होकर पूर्णतया ध्यानस्थ हो जाया करेंगे ।

इतनी जानकारी और तैयारी के साथ अपने विशिष्टि आसन में आसनस्थ होकर, नेत्र श्रोत्र बन्द करके, ध्यान और समाधि का अभ्यास प्रारम्भ कीजिए । ध्यान के नैरन्तर्य का नाम ही समाधि है । ध्यान का निर्बाधता के

साथ सम्यक् स्थित और सिरि रहना ही समाधि है। किसी चक्र एवं स्थान-विशेष पर कभी भूलकर भी ध्यान न जमाइए। अन्यथा कालान्तर में उस चक्र एवं स्थान पर प्रथम पीड़ा होगी और फिर कोई रोग हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप आपके स्वास्थ्य पर तो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ही, आपके शरीर में भी अनेक व्याधियाँ व्याप जाएगी। ध्यान जमाने की सरल और स्वाभाविक विधि यह है कि नेत्र बन्द करने पर बन्द आँखों में जैसा भी धूमल एवं धवल वर्ण दिखाई पड़े, उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित कीजिए। आरम्भ में इसी धूमल एवं धवल वर्ण को ब्रह्म का भर्ग वा वर्ण समझकर इसी पर अपना ध्यान स्थिर कीजिए। आरम्भ से ही ऐसा अनुभव कीजिए कि आसनस्थ होकर नेत्र बन्द करने पर आपकी दर्शन-शक्ति भीतर की ओर उलटकर हृदयाकाश में प्रविष्ट हो गई है और हृदयाकाश में ही आपको ब्रह्म का धूमल एवं धवल वर्ण दिखाई दे रहा है।

वक्ष और उदर के मध्य में जो दस अंगुल का गढ़ा है, उसी के भीतर हृदयाकाश है। वेद में इसी हृदयाकाश को ब्रह्म की पुरी कहा गया है। योगी जन इसी को ब्रह्म-सदन कहते हैं। यही आठ चक्रों और नव द्वारों वाली देवों को अयोध्या पुरी का हिरण्यकोश अथवा ज्योति से आवृत स्वर्ग है। इसी में इन्द्र का दिव्य सिंहासन है जिसके सब ओर अप्सराएं नाचती है। आसनस्थ और आत्म-अवस्थित होकर इस प्रकार हृदयाकाश में धूमल अथवा धवल वर्ण पर अपना ध्यान केन्द्रित करके ब्रह्म के वरेण्य भर्ग का ध्यान आरम्भ कीजिए।

23. आत्मदर्शन : तुर्यावस्था

ध्यान करते-करते आपका ध्यान जमने लगेगा। ध्यान के जमने पर प्रथम आपके हृदयाकाश में आच्छादित चमकीले परमाणुओं का अवलोकन होगा। ज्यों-ज्यों आपका ध्यान स्थिर होता जाएगा, त्यों त्यों परमाणुओं का नीहार तिरोहित होता चला जाएगा। एक ऐसी स्थिति आएगी कि ज्यों ही आप ध्यानस्थ हुआ करेंगे, त्यों ही आपका हृदयाकाश परमाणुओं के नीहार से क्षणमात्र में रिक्त हो जाया करेगा। इस प्रकार दर्पणवत् सर्वथा निर्मल हुए आपके हृदयाकाश में किसी समय ध्यानावस्था में सहसा आपको अपने आत्मस्वरूप का सन्दर्शन होगा। आत्मस्वरूप को पहचानकर अनायास ही आप अपने आपमें कह उठेंगे, यह मैं हूँ शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सुदिव्य और सुसुन्दर आत्मा।

ध्यानावस्था में इस प्रकार नित्य आपको आत्मसाक्षात्कार होने लगेगा और यों आत्मसाक्षात्कृत होकर आप निरन्तर आत्म-अवस्थित रहने लगेंगे। इसी का नाम तुर्यावस्था है। जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएं अब केवल आपके शरीर से सम्बद्ध रहेंगी, आपके आत्मा से नहीं। जब तब आत्म-साक्षात्कार द्वारा आत्म-अवस्थिति सिद्ध नहीं होती, तभी तक शरीर के निमित से आत्मा में जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति का अध्याहार-सा (तर्क-वितर्क) रहता है। तुर्यावस्था की सिद्धि होने पर इन तीनों अवस्थाओं से नितान्त मुक्त और वियुक्त होकर आत्मा सदा आत्म-जागरण को प्राप्त रहता है, आत्मा त्र्यवस्थातीत हो जाता है। त्र्यवस्थातीत होने पर आत्मा का तीनों अवस्थाओं में आत्म-जागरण रहता है। जागृति की अवस्था में वह आत्म-जागरण द्वारा अपने मन, बुद्धि, शरीर आदि से कार्य करता है। स्वप्नावस्था में वह आत्म-जागरण द्वारा अपने मन, बुद्धि, शरीर आदि को सुप्त करके लोक-लोकान्तरों में जहां चाहता है, वहीं अपनी आत्मचेतना को भेजकर वहाँ के सन्देश प्राप्त करता है और अपने सन्देश पहुँचाता है। सुषुप्ति-अवस्था में वह आत्म-जागरण द्वारा अपने मन, बुद्धि, शरीर आदि को सुषुप्त करके स्वयं ब्राह्मी स्थिति में स्थित रहता है।

तुर्यावस्थास्थ होने पर आप को वह स्थिति प्राप्त होगी कि जब आप शयनार्थ अपनी शय्या पर लेटेंगे तो क्षणमात्र में आप जागृति और स्वप्न की अवस्था का पार करके और अपने मन, बुद्धि, शरीर आदि को नितान्त सुषुप्त करके स्वयं आत्मना आत्म-जागरण द्वारा सुषुप्त-समाधि में स्थित हो जाएंगे। निश्चित समय तक अपनी देह को सुषुप्त रखन के बाद जब आप सुषुप्त समाधि से उतरेंगे, तो क्षण मात्र में ही आप सुषुप्ति तथा स्वप्न की अवस्थाओं को पार करके पूर्ण जागृति में आ जाएंगे। तन्द्रा, प्रमाद एवं आलस्य का सर्वथा निर्मूलन हो जाएगा।

तुर्यावस्थास्थ होने पर जब आप आसनस्थ होकर ध्यान करने बैठेंगे, तो निमेषमात्र में आप अपने मन, बुद्धि, शरीर आदि को सुषुप्त करके आत्म-जागरण द्वारा आत्म-अवस्थित हो जाया करेंगे। तुर्यावस्थास्थ होने पर आप आत्मख्याति को प्राप्त करके स्वयमेव अनायास ही त्रिगुणातीत हो जाएंगे। दिव्य आत्मस्वरूप का अवलोकन करते ही आपका आत्मा तम, रज, सत—तीनों गुणों से पृथक् होकर दिव्यता में संस्थित हो जाएगा। तुर्यावस्था की सिद्धि होने पर आपके आत्मा में आत्म-मुग्धता आ जाएगी। आप आत्मना आत्मा में ही तृप्त, तुष्ट और आत्मस्थ रहन लगेंगे। आप आत्माह्लाद, आत्मोल्लास, आत्मवीर्य और आत्मरस से आपूर रहने लगेंगे। आप आप्तकाम हो जाएंग। आप अनासक्त, निर्लेप, निष्काम, निर्विकार, निस्ताप, निष्पाप, निर्द्वंद्व और वासनारहित हो जाएंगे। आप के कर्मफलजन्य संस्कार समाप्त हो जाएंगे। आत्मा की निज दिव्य अवस्था की अवस्थिति ही तुर्यावस्था है।

24. साक्षात्कार

आसनस्थ होकर ध्यानावस्था में अब आपको विराट् का दर्शन होता है। अपने ध्यान को ओर अधिक स्थिर करके अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ विराट से आगे बढ़िए। वरेण्य भर्ग का ध्यान करते करते समयान्तर में आपकी अन्तर्दृष्टि से विराट् का सर्वथा लोप हो जाएगा और ऐसा होते ही आपका आत्मा नितान्त विशुद्ध आदित्य-वर्ण वरेण्य भर्ग में प्रविष्ट होगा, उस आदित्य-वर्ण वरेण्य भर्ग में, जिसे सनातन दिव्य सौन्दर्य कहते हैं, जो ब्रह्म का निज प्रकाशमय सौन्दर्य है, वह सौन्दर्य, जिसकी छटामात्र से यह सब सुन्दर हो रहा है और यह सारा सौन्दर्य जिस सौन्दर्य की आभामात्र है। परम व्योम में जब आपका आत्मा उस आदित्य-वर्ण वरेण्य भर्ग में ध्यानस्थ रहने लगेगा तो यथासमय आपकी समस्त धारणाओं में दिव्यता का संचार हो जाएगा और आपको धारणाएं नितान्त दिव्य हो जाएंगी।

आपकी दृष्टि दिव्य दृष्टि हो जाएगी और अपनी दिव्य दृष्टि से आपको उस दिव्य देव का, उस पर ब्रह्म का, साक्षात्कार होगा, जो परम अनन्त असीम सत्ता है और ''यस्य भासा सर्वमिदं विभाति'' जिसकी ज्योति से यह सब ज्योतिर्मय हो रहा है, जिसकी द्युति से यह सब द्योतित हो रहा है, जिसके प्रकाश से यह सब प्रकाशित हो रहा है, जिसमें और जिससे यह सब प्रतिष्ठित है।

ब्रह्म का साक्षात्कार करके आपकी श्रुति दिव्य श्रुति हो जाएगी और अपनी दिव्य श्रुति से आप उन दिव्य श्रुतियों का श्रवण करेंगे जो अनिवर्चनीय और सर्वज्ञानविज्ञानमयी है। ब्रह्म का साक्षात्कार करके आपका घ्राण से आप उस दिव्य गन्ध का अनुसेवन करेंगे, जिसकी महक से यह सब महक रहा है और जिसकी सुगन्ध से सकल सुगन्धियाँ सुरभित हो रही हैं। ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर आपकी रसना दिव्य रसना हो जाएगी और अपनी दिव्य रसना से आप उस दिव्य रस का रसास्वादन करेंगे जिसकी सरसता से ये समस्त रस सरस हो रहे हैं। ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर आपकी संस्पृस्टि

दिव्य संस्पृष्टि हो जाएगी और अपनी दिव्य संस्पृष्टि से आप उस दिव्य संस्पर्श का स्पर्श करेंगे जिसके संस्पर्श से यह सब संस्पृष्ट (जुटा हुआ) हो रहा है।

ब्रह्म का साक्षात्कार करके आप का आत्मा निरन्तर ब्रह्म में समाहित रहने लगेगा, क्योंकि य इत्तद्विदुस्त इमे समासते, जो उसे साक्षात् कर लेते हैं वे उसी में समाहित रहते हैं। इस समाहिति का नाम ही समाधि है। अब आसनस्थ होकर ध्यान करने की अवस्था में आपका आत्मा समाधि की उस अवस्था में संस्थित रहेग जिसे असम्प्रज्ञात अवस्था अथवा ब्रह्मलीनता कहते हैं। जागृति तथा स्वप्न अवस्था में आपका आत्मा समाधि की उस अवस्था में स्थित रहेगा जिसे सम्प्रज्ञात-अवस्था अथवा प्रचेतनावस्था कहते हैं। सुषुप्ति-अवस्था योग निद्रा बन जाएगी। तुर्यावस्था सुस्थिर और प्रखर हो जाएगी।

ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर साधक योगसिद्ध योगी हो जाता है, जीवन्मुक्त विदेह बनकर कर्तव्य कर्म करता हुआ जीवनयापन करता है, प्रयास-काल में आसनस्थ होकर समाधि की अवस्था में आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा शरीर से बाहर करके स्वेच्छापूर्वक देह का त्याग करता है और आत्मना ब्रह्मस्थ होकर ब्रह्म-निर्वाण, ब्राह्म मोक्ष प्राप्त करता है।

25. साधना में सुख है साधनों में नहीं

व्यक्ति साधनों के पीछे तो भागता है परन्तु साधना करना नहीं चाहता है उसे सुख कैसे मिले? साधनों से हटकर जीने का प्रयास करो। एक व्यक्ति मेरे पास आया मुझे प्रणाम किया और बोला मैंने सुना हे आपमें बड़े चमत्कार हैं। आपके आशीर्वाद से बिगड़े काम बन जाया करते हैं आपकी चर्चा बहुत है। मैंने कहा बात क्या हे तुम कहना क्या चाहते हो? उस आदमी ने कहा मुझे थोड़ी सी कृपा करें मेरी ज़िन्दगी बन जायेगी। मैंने कहा क्या बात है? बोला 50000 रुपये महीने कमाता हूँ आपकी कृपा हो जाये तो 50000 रुपये, 100000 रुपये की मासिक आय हो जाये। मैंने कहा 100000 रुपये महीने। बोला हाँ 50000 रुपये से मेरी जिन्दगी का गुजारा नहीं होता मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ इस आदमी की ज़िन्दगी का गुजारा 50000 रुपये में भी नहीं हो रहा है। मैंने पूछा सड़क पर जो तू अपनी गाड़ी खड़ी करके आया है उस गाड़ी में कौन है? बोला–मेरा ड्राइवर, इसको तू कितने रुपये मही देता है बोला–मैं उसे 10000 रुपये महीना देता हूँ। मैंने कहा उसे 10000 रुपये देता है और तुझे 50000 रुपये मिलते हैं। 10000 रुपये में उस ड्राइवर का गुजारा हो जाता है? बोला हाँ उसका गुजारा तो बड़े अच्छे से होता है वो तो खुश है बड़ा प्रसन्नचित है मैंने उस व्यक्ति से पूछा ड्राइवर के बच्चे भी होंगे बोला–चार बच्चे हैं। मैंने कहा तेरे कितने बच्चे हैं उसने कहा एक बच्चा। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जिसके चार बच्चे हैं वो तो 10000 रुपये में सुखी है और जिसके पास एक लड़का है और वो 50000 रुपये में भी दुःखी है।

मैंने उस व्यक्ति से कहा–यदि मैं तुझे 100000 रुपये दे दूँ तो तू सुखी हो जाएगा। उसने कहा–उम्मीद है कि सुखी हो जाऊँगा। 100000 रुपये में भी उसे उम्मीद है विश्वास नहीं है लेकिन मैंने कहा तुझे 50,000 तो क्या 5,00,000 भी मिल जाए तो भी सुखी नहीं हो सकता। जीवन में यदि संतुष्टि की साधना है तो व्यक्ति 50000 में भी सुखी हो सकता है।

व्यक्ति की चाहतें बढ़ती जा रही हैं। एक चाहत की पूर्ति नहीं हो पाती अनन्त चाहतें जन्म लेने लग जाती हैं। एक बात ध्यान रखना व्यक्ति को सुख

की तलाश है, मकान में सुख खोजता है, दुकान में सुख खोजता है, परिवार में सुख खोजता है, जमीन जायदाद में सुख खोजता है फिर और थोड़ा आगे बढ़ता है तो वह पदों में सुख खोजने लगता है। जो-जो कुछ मिलता है उसे छोड़कर और कुछ पाना चाहता है इसका अर्थ केवल इतना है कि आत्मापदार्थों को नहीं सुख को तलाश रही है। जीवनयापन के लिये भौतिक पदार्थ की परमावश्यकता है। परन्तु हमारे जीवन भौतिकवाद एवं आध्यात्मिक का सुन्दर समन्वय होना चाहिए। तभी हमें सच्चा सुख, सन्तोष एवं शान्ति मिलेगी।

इसके विषय में मैं आप को एक कहानी सुनाना चाहता हूँ। एक व्यक्ति ने प्रभु की बहुत भक्ति की। अब प्रभु ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि माँगों क्या मांगते हो। उसने कहा मुझे कोठी दे दो, गाड़ी दे दो, पत्नी दे दो, पुत्र दे दो, धन दे दो, पद दे दो। प्रभु ने उसे ये सब वस्तुएं दे दीं परन्तु शान्ति अपने पास रख ली क्योंकि वह शान्ति मांगना भूल गया। हम देखते हैं कि आज व्यक्ति के पास कोठी है, गाड़ी है, पत्नी है, पुत्र है, धन है, पद है, सब कुछ है परन्तु शान्ति नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि शान्ति कहाँ है शान्ति शमशान, वन, फोटो, विवेक आदि में है। अतः जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके प्रियजन एवं मित्र उसको श्रद्धांजलि देते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि प्रभु उसकी आत्मा को शान्ति दो। क्योंकि जीवन भर वह अशांत ही रहा। अतः शान्ति हमारे व्यवहार एवं स्वभाव से आती है। मन को शान्त कीजिए तभी आप को शान्ति का अनुभव होगा। प्रतिदिन 5 मिनट ही शान्ति के लिये साधना कीजिए फिर धीरे-धीरे इससे बढ़ायें। प्रभु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण कीजिये और अनुभव कीजिए कि प्राप्त ही पर्याप्त है और सन्तोष रखिये। 99 के चक्र में कभी न पड़ें। आप के जीवन में शान्ति आनी आरम्भ हो जायेगी।

मैं इतना कहना चाहता हूँ कि दुनियाँ आत्मा पदार्थों के सुख के लिए नहीं भाग रही है, परमात्मा के सुख के लिए भाग रही है। तुम्हारी आत्मा ऐसे सुख को चाहतीा है जिस सुख के बाद कभी दुःख न आये और यही कारण है कि आज तक तुम किसी भी साधन से तृप्त नहीं हो पाये। इसलिए मैं कह रहा

हूँ चाह और चाहतों को विराम देकर थोड़ा सा जीवन में चिन्तन होना चाहिए। जैसे कबीर ने लिखा है–

चाह गई चिन्ता हटी मनवा बे-परवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिये वो शाहों के शाहं।

जिसने इच्छाओं को नियंत्रण कर लिया है वो व्यक्ति जगत् का सम्राट् बन जाता है। आवश्यकताओं से जियो आकांक्षाओं से नहीं। क्योंकि लोभी व्यक्ति को चाहे एक शंख (1,00,00,00,00,00,00,000) रुपये मिले फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा। अतः लोभ को पाप का बाप कहा जाता है जोकि कभी भी पूरा नहीं होता है। क्योंकि लोभ अनन्त होता है। जैसे एक कहावत है–

सन्तोषी सदा सुखी, लोभी सदा दुःखी।

याद रखिए! संसार के भौतिक पदार्थों में सुख तो है परन्तु आनन्द नहीं है। क्योंकि संसार के प्रत्येक सुख के साथ दुःख जुड़ा है। परन्तु आनन्द (Bliss) केवल प्रभु समर्पण में ही है। क्योंकि आनन्द प्रभु का पर्यायवाची है। यही कारण है कि विश्वकोश (Encyclopaedia) में आनन्द शब्द का विपरीतार्थक (Antonymous) शब्द नहीं है। अतः आनन्द प्राप्ति के लिए साधना कीजिए।

बस से, रेल से, हेलीकॉप्टर से, तुम एक देश से दूसरे देश तक जा सकते हो लेकिन इनमें बैठकर परमात्मा तक नहीं पहुँचा जा सकता है। मोटरगाड़ी परदेश तो पहुँचा देगी परन्तु परलोक जाने के लिए अपने ही पैर काम आयेंगे, अपनी ही साधना काम आयेगी। सारे साधनों के बीच रहते हुए भी व्यक्ति यदि थोड़ी सी साधना भी तुम्हें सुखी बनाने में कारण हो जायेगी। संतोष और संतुष्टि की साधना जीवन को सुखी बनाने का सूत्र है।

ऊपरलिखित विवेचन-विश्लेषण से यह निष्कर्ष एवं निचोड़ निकलता है कि साधना मानव जीवन में अत्यावश्यक है। क्योंकि जैसे स्नान से तन आदि बाह्य अवयव , दान से धन तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है वैसे ही साधना से मनुष्य का मन शुद्ध होता है। इससे जीवन में सन्तोष, शान्ति एवं

आनन्द का आविर्भाव होता है । अतः एक हिन्दी कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

सेवा, संयम, साधना, सत्संग और स्वाध्याय ।
दुःख में सुख को पायेगा जो इनको अपनायेगा ।।

इसलिए स्वामी शिवानन्द लिखते हैं

Today is the bestday. Today is the day of your new birth. Start Sadhana now. With folded palms, bid goodbye to past mistakes and faults. You have learnt your lessons. March forward now with new hope, determination and vigilance.

–Bliss Divine P. 483

आज का दिन सर्वोत्तम दिन है । आज आप के नये जन्म का दिन है । अतः साधना आरम्भ कीजिए । अपनी भूतकाल की गलतियों का हाथ जोड़कर प्रायश्चित कीजिए । आप ने अपना पाठ याद कर लिया है । नई आशा संकल्प और सावधानी से अब आगे बढ़ो ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेंर-ओ-शायरी
17. ओ३म्
18. गायत्री रहस्य
19. अमर धर्मग्रंथ
20. सुखी कौन?
21. वेदसार
22.

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. अमर नीतिग्रंथ
2. पुराणपरिचय
3. ईश्वरसिद्धि
4. राष्ट्रभाषा हिन्दी
5. संस्कार
6. गीतांजलि
7. आर्यसमाज
8. ज्ञानामृत
9. यज्ञ
10. संत
11. संतवाणी
12. भतृहरिशतक
13. ब्रह्मचर्य
14. गृहस्थ
15. धर्म
16. कर्म
17. मन
18. भारत के क्रांतिकारी
19. भारत के भक्त
20. प्रभुभक्ति
21. ज्ञानगंगा
22. पाँच शत्रु
23. सच्ची वाणी
24. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
25. महावीर हनुमान
26. योगिराज श्रीकृष्ण
27. आदिशंकराचार्य
28. आचार्य चाणक्य
29. स्वामी रामतीर्थ
30. दस गुरु
31. आर्यसमाज के महामानव
32. आत्मकथा
33. वैदिक मनुस्मृति
34. वैदिक उपनिषद्वाणी
35. वैदिक दर्शनवाणी
36. वैदिक महाभारत
37. वैदिक गीता
38. **General English (Part I to V) (For All Classes)**
39. **Great Thoughts**
40. **Great Indians**
41. **Great Thinkers**
42. **Great Scientists**
43. सामान्य हिन्दी (भाग I-II) (सब कक्षाओं के लिये)
44. 1000 हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी
45. हिन्दी साहित्य का इतिहास
46. भाषा विज्ञान
47. आलोचना
48. साधना
49. मानषपीयूष
50. गीतापीयूष

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी Website : www.dpkapoorbooks.co.in पर भी देखा जा सकता है ।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. अमर नीतिग्रंथ
4. अमर धर्मग्रंथ
5. ईश्वरसिद्धि
6. गायत्रीरहस्य
7. ज्ञानामृत
8. गीतांजलि
9. क्या आप जानते हैं ?
10. ओ३म्
11. पुराणपरिचय
12. राष्ट्रभाषा हिन्दी
13. संस्कार
14. संत
15. संतवाणी
16. शरणागति
17. शेर-ओ-शायरी
18. यज्ञ
19. भर्तृहरिशतक
20. ब्रह्मचर्य
21. गृहस्थ
22. धर्म
23. कर्म
24. मन
25. सुखी कौन ?
26. भारत के क्रांतिकारी
27. भारत के भक्त
28. प्रभुभक्ति
29. वेदसार
30. ज्ञानगंगा
31. पाँच शत्रु
32. सच्ची वाणी
33. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
34. महावीर हनुमान
35. योगिराज श्रीकृष्ण
36. आदिशंकराचार्य
37. आचार्य चाणक्य
38. महर्षि दयानंद
39. स्वामी विवेकानंद
40. स्वामी रामतीर्थ
41. दस गुरु
42. आर्यसमाज के महामानव
43. आत्मकथा
44. वैदिक साहित्य
45. वैदिक मनुस्मृति
46. वैदिक उपनिषद्वाणी

(जारी...)

47. वैदिक दर्शनवाणी
48. वैदिक रामायण
49. वैदिक महाभारत
50. वैदिक गीता
51. संस्कृतरहस्य
52. साधना
53. मानसपीयूष
54. गीतापीयूष
55. दादा पोते की बातें
56. दादी पोती की बातें
57. दो दोस्तों की बातें
58. **Great Thoughts**
59. **Great Indians**
60. **Great Thinkers**
61. **Great Scientists**
62. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)
63. सामान्य हिन्दी (भाग **I-II**)
    (सब कक्षाओं के लिये)
64. 1000 हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी
    (सब प्रकार की प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए)
65. हिन्दी साहित्य का इतिहास
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)
66. भाषा विज्ञान
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)
67. आलोचना
    (पंजाब विश्वविद्यालय की एम.ए. हिन्दी की कक्षा के लिए)